सिद्ध योग

संस्थापक, संरक्षक एवं सम्पादक,
योगाचार्येश्वर, अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महार

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन

कोसवाई . आसाम

प्रकाशक

इस अंक में—

क्रम संख्या	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	अथातः प्रस्तुत मुखम्	....	१
२.	सर्वेष्टप्रद योग-साधना (हमारा विशेष लेख)	योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज	२
३.	वाराणसी योग-प्रचार	श्री विजयबहादुर सिंह	८
४.	कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्	[illegible]	६
५.	कुण्डलिनी शक्ति, उसके जागरण का उपाय	श्री हीरालाल शास्त्री	११
६.	ईशावास्योपनिषद्	कु० श्री निर्मला देशपांडे	१५
७.	पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम्	संकलित	१६
८.	भ्रम का स्वरूप और उसकी निवृत्ति	ब्र० श्री जगन्नाथ 'पथिक'	२६
९.	योग-दर्शन का ध्येय— मुक्ति-मार्ग का दिशा-दर्शन	श्री रामनरेश मिश्र	२८
१०.	शक्तिवर्धिनी मधुर नींद	श्री विनयमोहन शर्मा	३१
११.	अपना सूक्ष्म निरीक्षण करिये	....	३४
१२.	मन और ममता (कविता)	श्री सुखीराम [illegible]	३६
१३.	सिद्धगुरु श्री नामदेव	श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी	३७
१४.	योगाचार्य महर्षि घेरण्ड और चण्डकापालिक	आचार्य श्री धर्मावर्द्धन	४३
१५.	षट्कर्म तथा त्राटक	(गोरक्ष पद्धति से)	४५
१६.	अस्तित्व-प्रेम (कविता)	श्री महेन्द्र माथुर	४८
१७.	पत्र भाई-बहनों से	टाइटिल	३
१८.	[illegible] आनन्द	टाइटिल	४

प्रमुख सम्पादक

दिव्य

फोन ६३१६८

वार्षिक मूल्य १५ रु०, एक प्रति १.५० पैसे मात्र

श्री सद्गुरु परब्रह्मणे नमः   ॐ   श्री रामलाल प्रभवे नमः

श्री सिद्धगुफा-सवाई का

योग-महामेला

तथा

❀ महाप्रभु श्री रामलाल जी की पावन जयन्ती ❀

सभी गुरु-भाई-बहनों को यह जानकर परम हर्ष होगा कि श्री सिद्धगुफा-सवाई का वार्षिक योग-महामेला चैत्र शुक्ला सप्तमी, अष्टमी, नवमी वार शुक्र, शनि, रवि दिनांक १४, १५, १६ अप्रैल १९७८ को बड़ी धूम-धाम से मनाया जा रहा है। श्री गुरुदेव जी की ओर से छपे हुए निमन्त्रण-पत्र आप सबको भेजे जायेंगे ही, फिर भी यदि किसी को निमन्त्रण-पत्र न भी मिले तो भी सपरिवार इष्ट-मित्रों सहित सभी को इस पावन समारोह में सम्मिलित होकर धर्मलाभ लेने का प्रयत्न करना चाहिए।

विशेष रूप से सभी आगन्तुक भाई-बहनों को मौसम के अनुकूल अपने-अपने बिस्तर अवश्य साथ लाना चाहिए। क्योंकि आश्रम की ओर से सभी को बिस्तर देना सम्भव नहीं हो सकता।

निवेदक:—

स्वागत-समिति, श्री सिद्धगुफा योग-महामेला

योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा

सवाई (आगरा)

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

सिद्ध योग

वर्ष १०
अङ्क १२

मार्च
१९७८

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तस्मात्सर्वान् बहुविषयान् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः'॥

जडाः प्रत्युत मुदम्

अभुक्तायां यस्यां क्षणमपि न यातं नृपशतैः।
भुवस्तस्या लाभे क इव बहुमानः क्षितिभुजाम्॥
तदंशस्याप्यंशे तदवयवलेशेऽपि पतयो।
विषादे कर्त्तव्ये विदधति जडाः प्रत्युत मुदम्॥

अर्थात्

जिस पृथ्वी के स्वामित्व को पाकर उसका पूर्ण भोग भोगे बिना ही हमारे पूर्वजों को उसे छोड़ देना पड़ा, उसी के स्वामित्व को पाकर पृथ्वी के अंश के भी अंश को प्राप्त कर मनुष्य अपने को उसका पति मानने का दावा रखते हैं। बड़ा आश्चर्य है कि मूर्ख लोग जहां खेद करना चाहिये वहां भी आनन्द ही माना करते हैं!

हमारा विशेष लेख—

सर्वेष्ट प्रद योग-साधना

[योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की प्रवचन-शृङ्खला से]

[विश्व-विख्यात काशी नगरी में अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के योग-प्रवचनों का कार्यक्रम १० जनवरी से १७ जनवरी तक वहाँ के सुप्रतिष्ठित योग-प्रेमी महानुभावों के आग्रह पर रखा गया था। श्री महाराजजी की प्रवचन-शृंखला के कुछ महत्व-पूर्ण अंश 'सर्वेष्ट प्रद योग-साधना' शीर्षक से वहाँ के प्रख्यात दैनिक 'गाण्डीव' में पत्र के प्रतिनिधि ज्योतिष कला-निधि श्री शिवनाथ मेहरोत्रा द्वारा प्रकाशित कराया गया था— श्री मेहरोत्रा द्वारा प्रस्तुत उसी लेख को 'सिद्धयोग' में हम यहाँ पाठकों के हितार्थ प्रकाशित कर रहे हैं। —सं० सम्पादक]

सामान्यतया मनुष्य देवताओं की उपासना के लिए प्रवृत्त इसी हेतु से होते हैं ताकि उनके द्वारा वे शक्ति पा सकें और उनके सांसारिक कार्यों की पूर्ति हो सके। परन्तु देवताओं की शक्ति भी सीमित ही होती है। जब उनका पुण्य क्षीण हो जाता है, तो वे देवत्व से भ्रष्ट हो जाते हैं।

अतः समझदार व्यक्ति के लिए श्रेयस्कर यही है कि वह स्वयं सशक्त होनेका पथ अंगीकार करे। योग-साधना का मार्ग स्वयं शक्ति-सम्पन्न होने का मार्ग है। योगी अपनी साधना द्वारा सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणु से लेकर बृहदातिबृहद् विश्व-पर्यन्त अधिकार कर लेता है।

योग-साधना में मनुष्य को अन्तर्मुख होना पड़ता है। ध्यान का अभ्यास करना पड़ता है। ध्यान के अभ्यास के कई क्रम हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये जो पाँचों तत्व हैं, इन पर क्रम-क्रमसे वह अपना ध्यान करता है। पृथ्वी तत्व अर्थात् पहाड़ों, मकानों, मनोरम भूभागों पर भी वह ध्यान एकाग्र करता है। जल तत्व अर्थात् समुद्र, नदी, नाले और उनकी शक्ति तथा सौन्दर्य को ध्यानमें वह देखता है। तेज तत्व अर्थात् अग्नि, बिजली, सूर्य और प्रकाशमान विविध वस्तुओंको भी वह ध्यान का लक्ष्य बनाता है। वायु तत्व अर्थात् स्पर्श सुख प्रदान करने वाली वस्तुयें उसके ध्यान की लक्ष्य होती हैं। आकाश तत्व पर ध्यान जमा कर वह आकाश के अनन्त विस्तार और दैर्घ्य को परखता है और उनसे उठने वाले नादों का श्रवण करता है।

आरम्भ में योगी सम्प्रज्ञात समाधि की साधना करता है। उसके चार भेदों में से

वितर्कानुगम समाधि का उल्लेख ऊपर किया है। दूसरा भेद है विचारानुगम योग का। इसमें योगी उन्हीं पांचों तत्वों की सूक्ष्म तन्मात्राओं के साक्षात्कार में प्रवृत्त होता है। पृथ्वी तत्व की तन्मात्रा गन्ध है। इस पर ध्यान जमाने से योगी दिव्य गन्धका अनुभव करने लगता है। वह सोचता है—'गंधोऽहं', मैं गन्ध ही हूं। इस साधना द्वारा उसका अधिकार गन्धों पर हो जाता है। वह अब जैसी चाहे वैसी गन्ध उत्पन्न कर सकता है और उसे दूसरों के लिए प्रदान कर सकता है।

जल तत्व की तन्मात्रा रस है। इस पर योगी अपना ध्यान जमाता है तो उसे विश्व में परिव्याप्त सभी रसों का साक्षात्कार होता है। उसे दिव्य रसों का अनुभव भी होता है। रसों पर उसका अधिकार हो जाता है। वह अब चाहे दूसरों को भी दिव्य रसोंका आस्वाद करा सकता है।

तेज तत्व की तन्मात्रा है रूप। रूप पर ध्यान जमाने से योगी दिव्य रूपों का दर्शन करता है। उसका शरीर भी दिव्य सौन्दर्य से परिपूर्ण हो जाता है। किसी भी प्रकार का रूप धारण करने की उसमें सामर्थ्य आ जाती है। सभी रूपों पर वह अधिकार प्राप्त कर लेता है।

वायु तत्व की तन्मात्रा है स्पर्श। स्पर्श पर ध्यान करता हुआ योगी दिव्य स्पर्शों का अनुभव करता है। वह दिव्य आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है। किसी भी वस्तु को अपने स्थान पर बैठे-बैठे ही वह छू सकता है और संसार के किसी भी भाग में स्थित वस्तु को उठाने, स्पर्श करने में सक्षम हो जाता है।

आकाश तत्व की तन्मात्रा शब्द है। इस पर ध्यान जमाने पर योगी को दिव्य संगीतों व शब्दों के श्रवण का आनन्द मिलता है। वह संसार की हर भाषा और हर शब्द के अर्थ से बुद्ध हो जाता है। दिव्य नाद उसे सुनाई पड़ते हैं। कहा गया है कि नादके समान लय प्रदान करने वाला अन्य कोई साधन नहीं है। अतः वह मनोलय की स्थिति को प्राप्त कर लेता है। वह देवताओं से वार्तालाप करता है और उनके शब्दों को—आकाशवाणी—को यथावत् सुनता है।

सम्प्रज्ञात समाधि की तीसरी अवस्था है—आनन्दानुगत समाधि। उपरोक्त साधना के पश्चात् योगी आनन्दानुगत समाधि के क्षेत्र में प्रविष्ट होता है। इस साधना में तेज और आनन्द की लहरें जिन्हें साधक पहले अनुभव कर चुका है उसमें ओतप्रोत हो जाती हैं। वह अपने आपको तेजमय और आनन्दमय देखता है और दृढ़ता से अनुभव करने लगता है।

सम्प्रज्ञात समाधि की चतुर्थ अवस्था है—अस्मितानुगत समाधि। अब योगी अनुभव करता है कि मैं ही सब कुछ हूं, मैं यह विश्व

हूं, मैं शिव हूं, मैं विश्व भर में और उसके कण-कण में व्याप्त हूं और उससे भी कुछ अधिक।

जब योगी साधना के आरम्भ का संकल्प लेकर ध्यान जमाने के लिए प्रयास करता है तो उसे गुरुदेव की ओरसे मदद मिलने लगती है। आरम्भ में वह मन को एकाग्र करता है। मन की एकाग्रता ही योग की प्रथम वर्णमाला है। मन को अन्तर्मुख करो, हृदय गुहा में ध्यान करो। किसी वस्तु पर मन को एकाग्र करने का नाम ही धारणा है। मन में किसी वस्तु के स्वरूप का ध्यान करना धारणा है। धारणा में मन को पकड़कर बांधे रखना और ध्येय वस्तु का सतत् दर्शन करने का अभ्यास पुष्ट हो जाना ही ध्यान कहलाता है। अभ्यास से धीरे-धीरे ध्यान पुष्ट होता है। ध्यान की स्थिति पुष्ट हो जाने पर ध्येय पदार्थ से ध्यान करने वाला अपने आपको अभिन्न अनुभव करने लगता है। उस समय यह भी भूल जाता है कि मैं ध्यान कर रहा हूं, सिर्फ ध्येय मात्र ही शेष रहता है। इसी स्थिति का नाम सम्प्रज्ञात समाधि है।

योग-मार्ग के साधन में शक्तियों का प्रादुर्भाव बड़ी शीघ्रता से होता है। शक्ति पाकर साधक को अहङ्कार से बचना चाहिए। नारद जी के उदाहरण को ध्यान में रखना चाहिए। अभिमान करेगा तो साधक का पतन होगा। अथवा साधक यदि प्राप्त सिद्धि शक्तियों का भोग प्राप्ति में विनियोग करेगा तो भी उसका पतन होगा। विनयी बनकर साधक योग-मार्ग में निरन्तर बढ़ता रह सकता है। विनयी होकर ही वह योग की भूमिका को तरता है। गुरु ही योग-मार्ग में एकमात्र सहायक होते हैं। गुरु तत्त्व देवताओं की शक्तियों से भी अलुप्त और उत्कृष्ट है। देवता लोग अपनी-अपनी विशिष्ट शक्ति मात्र से संयुक्त हैं अतएव सीमाबद्ध हैं, परन्तु गुरुदेव अनन्त शक्ति से विभूषित, असीम, अनाहत और सर्वेश्वर हैं और साधक की भलाईके लिए सतत् उपस्थित रहने वाले हैं। देवता लोग योगियों की शक्ति देखकर घबड़ाते हैं, जलते हैं और उन्हें पथ-भ्रष्ट करने के लिए विविध भोग प्रस्तुत करते हैं ताकि योगी उनकी अपेक्षा उच्चतर शक्तियों का स्वामी न बन सके। विशेषतः उपरोक्त पंच तन्मात्राओं की सिद्धि कर लेने के बाद जब योगी दिव्य लोकों में गमन करता है तो देवताओं द्वारा सत्कार और विविध भोगों के उपहार पाता है। योगी न तो दिव्य भोगों में रुचि ले और न उन्हें त्यागने की अपनी सामर्थ्य के कारण अपने मन में अभिमान आने दे। गुरुदेव में श्रद्धा रखने वाला योगी हर प्रकार के समय-असमय में उनकी मदद पाता हुआ समस्त विघ्न-बाधाओं को लांघकर अपनी साधना पूरी करता है। गुरु की सीमा काल की सीमा से परे है। इसीलिए सिद्ध योग

कहते हैं—'सत श्री अकाल' जो काल से रहित है वही सत्य है। गुरु की शक्ति से ऊँची और कोई भी शक्ति नहीं है। उसे तुम राम, कृष्ण, विष्णु या शिव जैसे किसी भी नाम से स्मरण कर सकते हैं। उसी परमशक्ति के भय से सब देवता भी भीत रहकर अपने-अपने काम करते हैं। उनके चरण-नखों के स्मरण मात्र से चित्त में दिव्य प्रकाश का उदय होता है। संत तुलसीदास जी के शब्दों में—

श्री गुरु पद नख मनिगन जोती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥

ध्यान में व्याधि, स्त्यान भ्रांति संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थितत्व नौ प्रकार के विघ्न होते हैं वे सभी गुरु कृपा मात्र से ही निवृत्त होते हैं। गुरु के समान ही इष्ट भी योगियों का सहायक होता है। जिसका कोई इष्ट है उसका अनिष्ट कभी नहीं होता। वह इष्ट सर्वशक्तिमान परमात्मा ही होना चाहिए।

संप्रज्ञात समाधिकी अस्मितानुगत समाधि साध लेने पर योगी में ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय होता है। सत्य को धारण करने वाली बुद्धि उसमें उदित होती है और फिर कोई और संस्कार उसका नहीं बनता। उसमें असंख्य चित्त निर्माण करने की शक्ति आ जाती है। अपने हजारों चित्त निर्माण कर अपने प्रधान चित्त के अधीन उन्हें नियन्त्रित रखकर वह एक साथ हजारों कार्य कर सकता है। वह किसी को उपदेश देता है, किसी की रक्षा करता है, एक ही समय बहुत से स्थानों पर रहता हुआ साधकों की मदद भी करता है। उसमें दिव्य-निर्माण की शक्तियाँ आ जाती हैं जो कुछ वह चाहे तत्काल निर्मित कर देता है। उसमें निरोधोन्मुख वृत्ति उत्पन्न होती है जो समस्त संस्कारों को जलाने के बाद अपने आपको भी जलाकर भस्म कर देती है। इस प्रकार योगी परम ज्योति में लीन हो जाता है। यही योगियों का मार्ग है जो गुरु कृपा से प्रशस्त निर्देश प्राप्त कर पार किया जाता है। मानव-जीवन के कर्णधार गुरुदेव हैं, मानवदेह सुन्दर नौका है, भगवान स्वयं सुन्दर अनुकूल वायु के रूप में मददगार हैं। इतना सुयोग पाने पर भी यदि मनुष्य संसार-सागर को पार न करे तो वह आत्मघातीवत् दोष का भागी होता है। योग विद्या ही सर्व द्रष्टा व सर्व शक्तिमान बनाती है। प्रयास तत्काल आरम्भ करो और योग के क्षेत्र में—अन्तर्जगत में प्रवेश करो। जो भी इसके लिए प्रयास करेंगे उन्हें भगवान मदद देंगे।

वाराणसी में योग-प्रचार

श्री विजय बहादुरसिंह, वाराणसी

अनन्त श्री विभूषित योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज दिनांक १० जनवरी १९७८ को धनबाद से चलकर डीलक्स ट्रेन द्वारा रात्रि ९ बजे वाराणसी कैण्ट पहुँचे। स्टेशन पर ही डा० भृगिराम शर्मा, डा० विष्णुदत्त शर्मा, डा० रामशरणसिंह, श्री बालमसिंह, श्री विन्ध्यवासिनी सिंह, श्रीकान्त मिश्र आदि अन्य गुरुभाइयों ने श्री गुरुदेव का भव्य स्वागत किया और माल्यार्पण किया। वहाँ से वे डा० भृगिराम शर्मा के निवास स्थान ३०/६३, नगवा, वाराणसी पहुँचे। बहुत से लोगों ने वहाँ पर माल्यार्पण कर उनका स्वागत किया। प्रभु जी के ठहरने के स्थान को पहले से ही तोरण द्वारों और झालरों तथा पुष्पमालाओं से सुसज्जित किया गया था। आरती-पूजन के बाद प्रभु जी तथा साथ के सभी लोगों ने विश्राम किया।

सुबह श्री गुरुदेव जी ने ब्रह्मचारियों, साधकों एवं अन्य शिष्यों को ३ बजे ही जगाकर नित्यक्रिया के पश्चात् ध्यान में बैठाया। ६ बजे सभी लोग गुरुदेव जी के साथ गंगा-स्नान करने गये। वहाँ से लौटने के पश्चात् प्रातः ८ बजे भजन-कीर्तन के बाद आरती पूजन हुआ। पुनः उन्होंने उपस्थित शिष्य समुदाय को उद्बोधन किया। ब्रह्मचारी एवं अन्य साधकों ने जीवन तत्व साधन व व्यायाम-आसन करके रोगियों को उनके करने की विधि सिखलाई।

१२ जनवरी से महाराज जी नित्य प्रातः भजन कीर्तन और आरती-पूजन के पश्चात् रोगियों का उपचार यौगिक क्रियाओं द्वारा करते थे। उनके द्वारा बतलाए गए आसन बन्ध और मुद्राओं को ब्रह्मचारी धीरेन्द्र स्वरूप सिखलाते थे। यह कार्यक्रम नित्य सुबह ६ बजे से १० बजे तक चलता था। सुबह १० बजे से ११ बजे तक प्रतिदिन योग-जिज्ञासुओं की शंकाओं का समाधान गुरुदेव स्वयं प्रस्तुत करते थे। वे उसी बीच निकट और दूर से आने वाले सभी गुरु-भाई बहनों के श्रद्धापूरित माल्यार्पण को स्वीकारते और उन पर कृपा दृष्टि की अमृत वृष्टि कर उनकी सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान करते थे। प्रातः भजन-कीर्तन या रात्रि के आरती पूजन के अवसर पर गुरुदेव की कृपा से बहुत से शिष्य ध्यानस्थ हो जाते थे।

दिन में २ बजे से ४ बजे तक महिला

सत्संग का कार्यक्रम बहनों के लिए होता था इस कार्यक्रम में बहन उमा शर्मा का सुमधुर संगीतबद्ध भजन होता था जिसमें योगयोगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के योगैश्वर्यों की अद्भुत लीला का बड़ा ही सरस रोचक एवं मनोरंजक वर्णन होता था। उनके मधुर कण्ठ-स्वर-निःसृत ये लीलाकथायें श्रोताओं को भाव-विभोर कर देती थीं।

सायं ६॥ बजे से ७॥ बजे तक 'तुलसी-मानसमन्दिर' में महाराज जी का दिनांक १२ जनवरी से १६ जनवरी तक योग प्रवचन नित्य ही चलता रहा। बहुत बड़ी संख्या में लोग उपस्थित होकर महाराज जी के मुखारविन्द से निःसृत अमृत वचनों का मंत्रमुग्ध हो पान करते थे। योग के अत्यन्त कठिन विषयों पर इतनी सरल, सरस, सुबोध तथा अनूठी व्याख्या काशीवासियों के लिए दुर्लभ है ऐसा श्रोताओं का विचार है। इस प्रवचनमाला के अन्तर्गत योग क्या है, इसका पतन क्यों हुआ, इससे परमलक्ष्य को किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है, किसी भी साधन पद्धति का साधक कब और कैसे योग का विद्यार्थी बन जाता है, मनुष्य को योग-मार्ग ही क्यों अपनाना चाहिए, अन्य साधनों से योग-साधन ही श्रेष्ठ एवं सर्वोत्कृष्ट क्यों? आदि अनेक प्रश्नों का सुस्पष्ट समाधान श्री गुरुदेव जी ने प्रस्तुत किया। उन्होंने समझाया कि किस प्रकार सद्गुरु ईश्वर अपने शिष्यों (साधकों) के मार्ग से अन्तरायों और विघ्नों को दूर कर उन्हें अपने मार्ग में लक्ष्य तक पहुँचा दिया करते हैं। योगी किस प्रकार सभी प्रकार की शक्तियोंका स्वामी बनकर कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा कर्तुम् सर्वथा-शक्तः की सामर्थ्य वाला बन जाया करता है और अदीनास्याम् शरदः शतम् का पाठ पढ़ाता है।

इस प्रवचन माला का संक्षिप्त विवरण ज्योतिर्विद् श्री विश्वनाथ मेहरोत्रा ने लिपिबद्ध किया है। इस शृंखला से अलग दिनांक १५ को प्रातः ८॥ बजे से ९॥ बजे तक 'काशी हिन्दु विश्वविद्यालय' के 'संस्कृत महा विद्यालय' में 'गीता-समिति' की सविनय प्रार्थना पर श्री गुरुदेव जी ने पातञ्जलि योग सूत्र, उस पर महर्षि वेदव्यास जी का भाष्य एवं स्वयं योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से उद्घोषित श्रीमद्भगवत गीता के श्लोकों का उद्धरण देते हुए एक विद्वतापूर्ण प्रवचन प्रस्तुत किया। 'गीता' के कर्मयोग और ज्ञानयोग तथा भक्तियोग की मीमांसा प्रस्तुत करते हुए आपने बतलाया है कि अर्जुन का मोह किस प्रकार नष्ट हुआ। भगवान श्रीकृष्ण द्वारा बार-बार उपदेशित होने पर भी अर्जुन का मोह तब तक नष्ट नहीं हुआ, जब तक उसने श्रीकृष्ण के विराट स्वरूप को नहीं देखा। इसी प्रकार किसी को भी तब तक ज्ञान नहीं होता, जब तक कि वह स्वयं परम सत्य को

प्रत्यक्ष अनुभूति नहीं कर लेता। योग ही वह विद्या है जिसके जान लेने से सब जान लिया जाता है। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—"तस्माद्योगी भवार्जुन"। वहां उपस्थित विद्वान प्रवक्ता-वृन्द ने सश्रद्धा विदा किया।

उसी दिन प्रातः १०॥ बजे प्रभुजी अपने शिष्य एवं केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्री श्री राजनारायण जी के घर को, उनके भाईकी प्रार्थना को स्वीकार कर, अपनी पावन चरणरज से पवित्र किया। वहां से ११ बजे भाई महात्मासिंह जी एडवोकेट के घर प्रभुजी ने पधार कर बहुत से उपस्थित सम्भ्रान्त लोगों और गुरु-भाई-बहनों को स्नेह और कृपा प्रदान कर करीब १२॥ बजे महर्षि नगवा वापस आगये।

महाराज जी ने दिनांक १९ जनवरी को दिन में ११॥ बजे से १२॥ बजे तक 'काशी विद्यापीठ' के 'दर्शन विभाग' में छात्रों और प्रवक्ताओं के सम्मुख योग पर कुछ विचार रखे। उनके भाषण से छात्र और प्रवक्ता तथा अन्य श्रोता बहुत ही अधिक प्रभावित हुए। अन्त में धन्यवाद प्रदान व आभार प्रकट करते हुए वहां के उपकुलपति डा० श्री राजाराम (भूतपूर्व केन्द्रीय मन्त्री) ने कहा कि योगिराज जी ने बहुत ही सरल व स्पष्ट शब्दों में समझाया कि किस प्रकार योग, धर्मों और सम्प्रदायों में समन्वय एवं ऐक्य स्थापित करने में सक्षम है और सभी धर्मों को आत्मसात् करने की क्षमता योग में ही है। इस प्रकार योग ही सार्वभौम विद्या है।

इस प्रकार काशीवासियों के लिए यह अत्यन्त पावन और अमूल्य योग-प्रवचन का अवसर प्राप्त हुआ था जिसका लोगों ने भरपूर लाभ उठाया है।

दिनांक १७-१-७८ को प्रभु जी की आरती पूजन के पश्चात् भाई विश्वगुप्ता जी के घर पधारे। वहां पर बहन उमा जी ने एक भजन सुनाया। अपराह्न ३ बजे आश्रम से श्री स्वामी प्रसादसिंह (चेयरमैन साहब) और डा० श्री विजयसिंह गुरु जी महाराज को ले जाने के लिए आये। इस अवसर पर वाराणसी के प्रायः सभी गुरु-भाई-बहन उपस्थित थे। उन्होंने अपने पूज्य गुरुदेवजी का आरती-पूजन किया और भावभीनी विदाई दी।

चित्त क्या है ?

चित्त जड़ है, इसलिए उसके पीछे चेतन आत्मा हो और उसके साथ चित्त का स्पर्श होता है तभी चित्त इन्द्रियों द्वारा सृष्टि के जड़ पदार्थों को ग्रहण कर सकता है, अन्यथा नहीं। चित्त के पीछे ज्ञाता है और आगे दृश्य सृष्टि है। चित्त और सृष्टि के बीच में इन्द्रियां हैं। द्रष्टा का चित्त के साथ सम्बन्ध आने पर और चित्त का इन्द्रियों द्वारा सृष्टि के साथ सम्बन्ध आने पर ही हमें सृष्टि का ज्ञान होता है। चित्त केवल पदार्थ ग्रहण करने का साधन है।

—विनोबा भावे

कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्

—आचार्य श्रीसर्वं

महाभारत युद्ध के अठारहवें दिन, अपराह्न के कुछ ही क्षण बाद युद्ध समाप्त हो गया था। सखा अर्जुन को रथसे उतरने का निर्देश दे दिया, जब जगद्गुरु श्रीकृष्ण स्वयं भी रथ से अवतीर्ण हुए, तब महाबली हनुमान् उनसे अनुमति ले व्योम-मार्ग से कहीं चले गये और वह दिव्य रथ धूं-धूं कर जल गया।

केशव से कुछ कदम पीछे रणक्षेत्र का निरीक्षण करते हुए महारथी अर्जुन सोच रहे थे कि उस दिन केशव ने कितनी रहस्यमयी सूचनायें देकर कौरवों की सभी चालों को विफल कर दिया था—जब भगदत्त ने दुर्योधन के कहने पर युधिष्ठिर के रथ पर अपना विक्त-विधुत महागज ठेलते हुए अनीतिपूर्वक हमारे अग्रज के मनोबल को क्षीण करने की कुचेष्टा की थी। इन्द्र द्वारा उसे दिए गये नारायणास्त्र को, जिसे मैंने मात्र एक अंकुश समझा था—अपने श्रीवत्सचिह्न पर धारण कर इन्होंने सम्पूर्ण मित्र-सेनाओं को महाविनाश से बचा दिया था। तब मैं यह समझ न सका था कि उस भयानक युद्धकाल में भी सखा ने मुझे ऐरावत के अग्रज, महागज सुप्रतीक के दक्षिण पार्श्व की ओर झूलने वाले महाघण्ट को ही काट गिराने का निर्देश क्यों दिया? पुनः जब मैं युद्ध में अनेक रणनीतियों के प्रयोग द्वारा भी भगदत्त से पार न पा सका तो उस अतिवृद्ध महायोद्धा का भालपट्ट छेदन करने का संकेत देकर विजय प्राप्त करना इन्होंने ही सुगम कर दिया था।

इन्हीं विचारों में मग्न अर्जुन अपने प्रिय सखा का अनुगमन करते काफी दूर आगे निकल गये थे, तभी ठोकर लगने से ध्यानभंग होने पर उन्होंने देखा कि वही स्वर्णघण्ट है! और उसके उलट जाने पर उसके नीचे से टिटिहरी के बच्चे सुरक्षित निकल आये थे। अर्जुन गम्भीर मौन भाव से अपने विचारों में तन्मय थे। तभी—'किरीटिन्, चलते समय केवल गमन पर ही ध्यान रहना चाहिए, विशेष चिन्तन ठीक नहीं, अभी तुम गिरे होते' कहते हुए सखा केशव के अधरों पर आश्वासनमयी मुस्कान विकसित हो उठी। अर्जुन ने कृतज्ञतावश कहा—

'तुम्हारे आश्रित का भी क्या कहीं कभी पतन हो सकता है, अच्युत! तुम्हीं ने तो यह कहा था न—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये,
जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां,
योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

(गीता ९/२२)

'जो अनन्य प्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वर का निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्काम भाव से मुझे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर (मेरा) चिन्तन करने वाले पुरुषों का योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ।' इस समय मेरे चिन्तन का विषय यही था, जनार्दन ! तुम्हारा यह सूक्ति स्पष्ट सूत्रोपम और उसका मर्म ! कैसा अद्भुत ! कितना संवेदनापूर्ण है !!

अब मुस्कराने की बारी किरीटी की थी, किन्तु यथा शीघ्र अपने आपको संयत करते हुए किरीटी (अर्जुन) ने पुनः प्रश्न किया—'सखे ! टिटिहरी पर इतनी कृपा क्यों ?'

श्रीकृष्ण रहस्योद्घाटन करने लगे—'यह (मृत टिटिहरी) वाली पक्षिणी पहले वपु नाम की अप्सरा थी। अब इसका अगला-जन्म धन्वन्तरि काश्यप की आसर्गमयी पुत्री शुचिव्रता के रूप में होगा। अब तुम इस महागज के विषय में भी पूछोगे, जिसने स्वर्गीय भगवत्त का वाहन होना स्वीकार किया था। इसके विषय में तुम्हारी भाभी सत्यभामा, तुम्हें पूर्ण जानकारी दे सकेंगी।'—नीति पूर्वक योग और शील के अधीश्वर श्रीकृष्ण ने अपने हरि-अवतार से सम्बन्धित 'गज और ग्राह' की घटना सुहृद् सखा से छिपाली थी। उन सर्व नियामक (श्रीकृष्ण) की प्रत्येक लीला अलौकिक, गाम्भीर्य, मर्म से भरी और रहस्यमयी होती है, जिसमें सर्वभूतहित तथा जीवों के परम कल्याण का सतत संकल्प निहित रहता है।

करुणा परवश, भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण जीव दयाद्रता के अपने स्वाभाविक धर्म के विषय में श्रीमुख से निःसृत दिव्य वाणी (श्रीमद्भगवद्गीता) में कैसा तत्त्व और गाम्भीर्य निहित है—

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा,
मां शान्तिमृच्छति ।

(गीता ५/२९)

आज हम उन अतिशय महान एवं सर्वभूतों के सुहृद, जगद्गुरु सर्वात्मा श्रीकृष्ण को बार-बार सादर नमन करते हैं—

'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्'

प्रमाद पतनकारक होता है। कोई भी मनुष्य दुःखभोग प्रमादके कारण ही भोगता है, अतः प्रमाद को मृत्यु (प्रमादो वै मृत्युः) कहते हुए शास्त्रों ने प्रमाद न करने को कहा है—'मा प्रमदः।'

कुण्डलिनी शक्ति:--उसके जागरण का उपाय

श्री हीरालाल शास्त्री, फर्रुखाबाद

योगसिद्धि प्राप्ति के लिए कुण्डलिनी को उद्बोधन करना अत्यावश्यक कहा है, क्योंकि जब तक कुण्डलिनी जागरण नहीं होता है, तब तक योग-सिद्धि नहीं हो सकती है। जिस प्रकार सर्पराज शेषनाग जी वन, पहाड़, समुद्र, नदी आदि सहित इस पृथ्वी के आधार हैं, उसी प्रकार शरीरांतर्गत कुण्डलिनी भी सभी हठतन्त्र की आधार है। इसके जागरण मात्र से षट् चक्रभेदन, सभी ग्रन्थियों का भेदन हो जाने से ही साधक को ज्ञान प्राप्ति होती है और प्राणवायु भी सुषुम्ना द्वारा ब्रह्मरन्ध्र में प्राप्त होकर गमनागमन में सफल हो जाता है और साधक अभीष्ट समाधि अवस्था को प्राप्त होकर निरन्तर आनन्दमग्न रहकर मुक्ति लाभ करता है। इसके लिए मुद्राओं का ज्ञान और उनका अभ्यास आवश्यक है। जैसा हठ या ग्रन्थ में लिखा है। यथा--

स शैलवन धात्रीणां,
यथा धारोऽहिनायकः।
सर्वेषां हठतन्त्राणां,
तथा धारो हि कुण्डली॥

सुप्ता गुरु प्रसादेन,
यदा जागर्ति कुण्डली।
तदा पद्मानि सर्वाणि,
भिद्यन्तेग्रन्थयोऽपि च॥

प्राणस्य शून्य पदवी
तदा राजपथायते।
यदाचित्तं निरालम्बं,
तदाकालस्य वञ्चनम्॥

तस्मात् सर्व प्रयत्नेन,
प्रबोधयितुमीश्वरीम्।
ब्रह्मरन्ध्र मुखे सुप्तां,
मुद्राभ्यासं समाचरेत्॥

घेरण्ड संहिता--

महामुद्रा, नभोमुद्रा,
उड्डियानं, जलन्धरम्।
मूलबन्धं, महाबन्धं,
महावेधश्च खेचरी॥
विपरीतकरिणी योनिः,
वज्रोली, शक्तिचालिनी।

ताडागी, माण्डुकीमुद्रा
शाम्भवी पञ्चधारणा ॥
अश्विनी, पाशिनी, काकी,
मातङ्गी च भुजङ्गिनी ।
पञ्चविंशति मुद्राः,
वै सिद्धिदास्चैव योगिनाम् ॥

भगवान शङ्कर जी ने शिव संहिता में दस ही मुद्रा बताई हैं। यही हठयोग दीपिका में हैं, कुछ भेद से। यथा—

महामुद्रा महाबन्धो,
महावेधश्च खेचरी ।
जालन्धरो मूलबन्धो,
विपरीतकरणी तथा ॥
उड्यानं चैव वज्रोली,
दशमं शक्तिचालनम् ।
इदं हि मुद्रा दशकं-
शिवोक्तं परमोत्तमम् ॥

महामुद्रा—बायें पाद की एड़ी से गुदा और मेढ़ू के मध्यगत योनि-स्थान को दृढ़ता से दबावे और दाहिने पैर को फैलाकर उसके अंगूठे को दोनों हाथ की अंगुलियों से पकड़े, फिर श्वास को रोककर पेट में भरे और ठोढ़ी को हृदय पर रखकर दबावे और चित्तवृत्ति को चैतन्य में स्थिर करके वायु का यथाशक्ति कुम्भक करे। इसी प्रकार दक्षिणांग से अभ्यास करे।

वामगुल्फेन सम्पीड्य,
योनिं गुदमेढ्रान्तरगाम् ।
याम्य पादं प्रसार्याथ,
करे धृतपदांगुलः ॥
जालन्धरं विधायाथ,
भ्रुवोर्मध्ये निरीक्षयेत् ।
महामुद्रा भिधामुद्रा,
योगिशोकासुसिद्धिद ॥

बाईं एड़ी से पहले की भाँति योनि को दबाकर और दाहिने पैर को जाँघ पर दृढ़ता से इस प्रकार दबाकर रक्खे कि एड़ी (बाईं) का दबाव योनि पर दृढ़ता से रहे, जिससे अपानवायु ऊपर चढ़कर समान से मिले और प्राणवायु अधोमुख होकर फिर प्राण, अपान की ऊर्ध्वगति साधन करे।

याम्यः प्रसारितः पादो,
विन्यस्य तमूरुपरि ।
गुदयोनिं समाकुञ्च्य,
कृत्वाचापान मूर्ध्वगम् ॥
योजयित्वा समानेन,
कृत्वा प्राणमधोमुखम् ।
बन्धयेदूर्ध्वगत्यर्थं,
प्राणापानेन यः सुधीः ॥
नाड़ी जालाद्रसव्यूहो,
मूर्धानं याति योगिनः ।

उभाभ्यां साधयेत्,
पश्चाद्येकैकं सुप्रयत्नतः ॥
कथितोऽयं महाबन्धः,
सिद्धिमार्ग प्रदायकः ।
प्रसादादस्य बन्धस्य,
साधयेत् सर्ववाञ्छितम् ॥

महावेध—वामपार्ष्णि की दृढ़ता से गुद-योनि में लगाकर दक्षिण पाद को ऊरु पर स्थापित कर अपान-प्राण की एकता करके कुम्भक से उदर में वायु को रोककर नितम्बों को ताड़ित करने से महावेध होता है।

वामपार्ष्णितुदार्ढ्येन,
गुदयोनीनिधापयेत् ।
दक्षिणं पादमाकुञ्च्य,
वामोरौ सन्निधाय च ॥
हस्तौ च भूमौ संस्थाप्य,
स्फिचौ संताडयेत् भुवि ।
महावेधश्च विज्ञेयः,
योगसिद्धि प्रदायकः ॥

जीभके नीचे मांसतन्तु जिह्वा और जिह्वा को जो मिलाने वाला है उसको तीक्ष्ण शस्त्र से छेदन करके हरड़ और सैन्धव का चूर्ण मलता रहे, जिससे रक्त बन्द हो जाय और पाकक्रिया न हो। उसके बाद मक्खन को जीभ में लगा कर प्रतिदिन मलकर और खींचकर बढ़ाता रहे जो भ्रूमध्य तक पहुँचने लगे, फिर तालु में उल्टी डालकर और भ्रूमध्य में दृष्टि रखकर अमृत-पान करने से यह मुद्रा सिद्ध होकर आकाशगमन सिद्ध होता है। अग्नि से जलना, जल में डूबना आदि नहीं हो सकते।

जिह्वाधस्थां च या नाडीं,
तीक्ष्ण शस्त्रेण छेदयेत् ।
अभया सैन्धवाभ्यां,
वैधर्षणं प्रत्यहं चरेत् ॥
ततश्च नवनीतेन,
दोहनं सम्यगा चरेत् ।
कर्षणाकर्षणैः कुर्यात्
रसना दीर्घनांचितेत् ॥
रसनां तालुमध्ये च,
प्रवेशं मनसा चरेत् ।
यावदुगच्छेत् भ्रुवोर्मध्ये,
तथा भवति खेचरी ॥
कपाल कुहरे जिह्वा,
प्रविष्टा विपरीतगा ।
दृष्टि भ्रूमध्यगां चैव,
ध्यानं कुर्यात् विचक्षणा ॥
मूर्च्छालस्ये क्षुधातृष्णा,
साधके तनुवर्णाहि ।
जरा मृत्यु रोग शोकाः
कदाचिन्न भवन्ति हि ॥
अग्नि, मारुत, तोयेभ्य-
स्तस्य पीडा न जायते ।
अमृत प्राशनादेव,
सर्पादि भयवर्जितः ॥

हस्ताभ्यां शिरोवेष्ट्य,
भूमौसंस्थापयेत् सुधीः ।
ऊर्ध्वपादः स्थिरो भूत्वा
विपरीतकरणी चास्य ।
नाभिमूले स्थितो सूर्य-
स्तालुमूले च चन्द्रमा ।
अमृतं ग्रसते सूर्यस्ततो
मृत्युवशो नरः ॥
अनेन मुद्रा योगेन
चोर्ध्वं सूर्योऽघः शशि ।
अमृतस्य रक्षणं कृत्वा
मृत्युरत्नैव निवारयेत् ॥

इस प्रकार विपरीतकरणी का अभ्यास साधक को अभीष्ट फल देता है। इससे शारीरिक, मानसिक सभी व्याधियाँ शरीर को कष्ट नहीं दे सकती हैं। शरीर स्वस्थ रहता है, मन की प्रसन्नता रहने से योग-साधन में उत्तरोत्तर रुचि बढ़ती है। वृद्धावस्था में भी शरीर में झुर्रियाँ नहीं पड़ती हैं, न बाल ही सफेद होते हैं। कुछ आचार्य लोग इसी को शीर्षासन भी कहते हैं।

मूलाधारे कुण्डलीशक्तिः
सार्धत्रिवलयान्विता ।
सर्पाकारेण स्वपिति तस्या
बोध न साचरेत् ॥
पार्ष्णिना वाम पादस्य
गुदयोनि प्रपीडयेत् ।
दक्षिणञ्च तदा पादं
वामोरौ सन्निधापयेत् ॥
हस्ताभ्यां तदा योगीवल
दत्वा सुखेन वै ।
स्कन्धयोश्चालनं कुर्यात्
नाभ्याग्निर्दीप्यते तदा ।
तेन कुण्डलिनी तस्या
निद्रांस्त्यजति सर्वदा ।
सुषुम्ना द्वार त्यागेन
प्राणवायु गतिर्भवेत् ॥
ब्रह्मरन्ध्रं प्रविष्ट्वा हि
प्राणो मुक्तिप्रदाभवेत् ॥

इस प्रकार शक्तिचालिनी मुद्रा से कुण्डलिनी जागरण होकर सुषुम्ना द्वार को खोल देती है और प्राणवायु ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच कर योग-सिद्धि प्राप्त होती है। साधक भाई इस अभ्यास को दृढ़ता से करके लाभ उठायें तब आगे फिर लिखेंगे।

—※ शुभ-कर्म पताका ※—

जब आये बनी यो नकीरी बनी, कर कर्म बनाई क्षमा, शुभ-राका,
जग-जीवन-तत्व-गुरुत्व यही, "परमार्थ है" मानव-धर्म-धरा का।
'शङ्कर' साधक सिद्ध बने यहाँ, साधना से चलता यश-साका,
धन्य धरा में हुआ है वही, फहरे जिसकी शुभ-कर्म-पताका ॥

—श्री गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर'

उपसंहार—१

ईशावास्योपनिषद्

— सु० श्री निर्मला देशपांडे

एक बार विनोबा जी ने कहा था कि तुम लोग दुनिया को सत्य समझ कर सेवा करते हो, मैं मिथ्या समझकर करता हूँ। सत्य समझ कर करते हो इसलिए इसमें तुम लिप्त हो जाते हो, आसक्त हो जाते हो। उनके सिर पर बोझ होता है, चिन्ता होती है, सफलता मिली तो सुख और नहीं मिला तो दुःख होता है। इस बोझ को पटकने के लिए ही यह ईशावास्य हमसे कहता है कि काम करना तो है, लेकिन जीवन को लीला समझ कर करो, खेल समझ कर करो, यह कोई आसान बात नहीं है। लेकिन यह दृष्टि रहनी चाहिए। यदि ध्रुव के सितारे पर दृष्टि रही तो पता चल जाता है कि इस दिशा में जाना है। ईशावास्य उपनिषद एक सितारा है। वह बता रहा है कि यह हमारे जीवन की दिशा है। ध्रुव का सितारा देख लिया तो ध्रुव पर ही पहुँच गये, ऐसा तो नहीं होता, इसलिए हमारे चित्त में और कुछ उलझन पैदा न करते हुए हम जिन बुनियादों पर खड़े थे, उसको जरा धक्का दे देने का काम उपनिषद अगर करता है तो अच्छा है। हम सोचें कि आखिर यह सब जो हम कर रहे हैं वह किस लिए? यह सवाल मन में पैदा हुआ तो वह सवाल ही जवाब दे देगा।

इस सन्दर्भ में एक ही बात कहनी होगी, पापी पाप-कर्म कभी छोड़ भी सकता है, क्योंकि वह जानता है कि वह गलत है, लेकिन कभी-कभी पुण्य-कर्म सोने की जंजीर बन जाता है। विनोबा जी ने एक अजीब सिद्धान्त बताया था कि मुक्ति के मार्ग में पाप जितनी बाधा नहीं देता जितना पुण्य देता है। इसका मतलब यह नहीं कि हमें पाप करना चाहिए। पुण्य ही करना है, लेकिन उसकी आसक्ति नहीं होनी चाहिए, उसका अहङ्कार नहीं होना चाहिए। एक दिन तो सब छोड़कर जाना है। हमने तो मान लिया है कि हमारे बिना यह सब कैसे होगा? यह जो हमारी दृष्टि है वह बदल जाये और ऐसा अनुभव करें कि जो भी हम सब कर रहे हैं सब खेल है, इसलिए आनंद है। उसमें चिपकें नहीं, लिप्त न हों।

पूछा जाता है अक्सर कि जब मनुष्य नीति-मार्ग पर चलता है, आध्यात्मिक मार्ग पर चलने की कोशिश करता है, तब देखा गया है कि दुनिया उसी को ज्यादा सताती है, इतना ही नहीं उसके मार्ग में रोड़े भी उपस्थित करती है। अतः ऐसा कोई मार्ग सुझायें कि जिससे उन विरोधियों को बगैर दुखाये उन्हें सद्बुद्धि प्राप्त हो।

यह प्रश्न करने वाले तो स्वर-साधना

किये बगैर ही गवैये बनना चाहते हैं। बरसों तक 'सा रे ग म प ध नि सा' को घोंटना पड़ता है, तब जाकर गवैये बन सकते हैं। हर चीज में परिश्रम करना पड़ता है। दोनों हाथ में लड्डू नहीं मिल सकते। नीति के मार्ग पर चलना भी चाहेंगे और यह भी चाहेंगे कि कोई सताये नहीं, वह तो हमारी परीक्षा होगी। कुरानशरीफ में एक बहुत अच्छी बात कही है कि हर चीज अल्लाह देता है परीक्षा के लिए। कोई सताता है तो वह प्रश्न-पत्र है हमारे लिए। इस परीक्षा में पास होना है। लोगों ने तकलीफ पहुँचाई, तो वह भी पर्चा है। दोनों परीक्षा ही हैं। परीक्षा में से तो गुजरना ही पड़ता है।

जब इस तरह की परीक्षा होती है, तो मन में लगता है कि क्या हम गलत राह पर तो नहीं चल रहे हैं, क्योंकि तकलीफ होती है। हम डगमगाने लगते हैं, लेकिन यदि हमारी दृष्टि साफ हो कि यह होने ही वाला है तो हम स्थिर रह सकेंगे। बुद्ध भगवान और शिष्यों की कहानी मैंने बताई थी। लोगों ने मारा-पीटा तो भी वे कहते रहे, लोग बड़े अच्छे हैं। जीवन की यह दृष्टि रहे तो इन सारी बाधाओं में से हम भी निकल सकेंगे और इसीलिए उपनिषद वगैरह का अध्ययन हम करते हैं।

बाधायें जरूर आयेंगी, आनी ही चाहिए। कहा है—

रंग लाती है हिना पत्थर पे घिस जाने के बाद,
सुर्खरू होता है इनसां ठोकरें खाने के बाद।

घिसे बिना रंग नहीं प्रकट होगा, घिसे बिना चन्दन की सुगन्ध नहीं फैलेगी। यह प्रकृतिका नियम है। हम सोचते हैं कि घिसना न पड़े और खुशबू फैले। कुछ नये वस्तु की सृष्टि बनाना चाहते हैं तो विश्वामित्र को बुलाकर कहना होगा, लेकिन इसको प्रकृति का नियम समझकर चलें तो दुःख कम से कम होगा, तकलीफ कम से कम होगी। अगर दुःख, कष्ट बहुत ज्यादा आ जाये तो भगवान से थोड़ी सी लड़ाई कर लेनी चाहिए। जैसे तुकाराम महाराज करते थे। वे कभी-कभी भगवान से लड़ लेते थे। हम भी कह सकते हैं कि हे भगवान! मेरी फजीहत होने वाली है, मैं तेरी भक्त हूँ। अगर मैं हार जाऊँगी तो दुनिया वाले कहेंगे कि भगवान का भक्त हार गया और दुनिया में तेरी बदनामी होगी। इस प्रकार भगवान से चाहे तो लड़ भी लें। लेकिन यह खूब समझ लीजिए कि ठोकर खाने से सत्य निखर उठता है। सोना आग में तपता है तो अधिक चमकता है, तो जरा चमक प्रकट हो, खुशबू प्रकट हो, रूप प्रकट हो, इसलिए यह आ रहा है।

कभी-कभी विद्यार्थी कहते हैं कि हम अमुक विषय में फेल हुए हैं फिर भी हमें पास कर दीजिये—पेस मार्क दे दीजिये। अब आगे

जाकर तो यह भी कह सकते हैं कि बिना परीक्षा दिये ही पास कर दीजिये। यह जो विद्यार्थी मानस है, करीब-करीब वैसा ही मानस इस प्रश्न में प्रकट हो रहा है। हमारा सभी का यह मानस होता है, लेकिन इस मानस से जीवन की परीक्षा नहीं दे पायेंगे। परीक्षा पास करनी हो तो मेहनत करनी ही पड़ेगी, कष्ट उठाने ही पड़ेंगे, परीक्षा में नम्बर प्राप्त करने ही होंगे, तब जाकर ज्ञान प्राप्त होगा। यह सब जिसे अंग्रेजी में कहते हैं—'पार्ट ऑफ दि गेम' खेल का हिस्सा ही है। बाधायें, तकलीफें ठोकरें, अपमान, उपेक्षा यह सब उसका हिस्सा है, ये आयेंगी, इससे घबराने की जरूरत नहीं। आगे बढ़ने के लिए अधिक विकास के लिए यह सब आवश्यक है।

दूसरा एक सवाल पूछा गया है कि आत्म-ज्ञानी कैसे बनें और वह कैसे कार्य करता है? इस बारे में आपने बताया है। पर एक साधारण मनुष्य के लिए इतना सब कुछ करना सम्भव नहीं होता। क्या ऐसा कोई रास्ता नहीं है कि साधारण व्यक्ति अपने कार्य द्वारा आत्मज्ञानी के कार्य के साथ कुछ सन्तुलन बिठा लें?

थोड़े में यह कि बहुत ऊँची-ऊँची बातें सुनी, पर हमारे जीवन से उसका क्या मेल? मैंने कहा कि सितारा देख लिया तो दिशा का पता चल गया और दिशा का पता चलते ही चलना शुरू कर सकते हैं। अब अपने जीवन में हम क्या कर सकते हैं? छोटी-छोटी बातें लें। परिवार-भावना की बात हम करते हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की बात तो बड़ी है लेकिन मान लीजिये, यह कस्तूरबाग्राम है—एक छोटी सी कौलोनी है, यह पूरा एक परिवार है, ऐसी भावना कर सकते हैं? कुल विश्व का प्रतिनिधित्व यहां है। भिन्न-भिन्न जमातों के भाषाओं के लोग यहां हैं। इसमें कोई कम योग्यता वाला होगा, कोई अधिक, कोई कम तनख्वाह वाला होगा, कोई ज्यादा, लेकिन सबके प्रति समान प्रेम, समान भाव, जैसे कि कुटुम्ब में होता है इसका प्रयास करें। यह एक सहज उपासना हो सकती है। जैसे अपनों के लिए भाव होता है, वैसा सबके लिए हो। मेरा ख्याल है कि यह बहुत कठिन काम नहीं है। दूसरी बात लें सफाई की। हमने अभी सुना—"कुर्वन् एव इह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः।" कर्म करते हुए सौ वर्ष जीओ। श्रम करने का अवसर मिलता है। सफाई का काम तो अच्छा मौका हमें मिला कि कैसे कर्म करना चाहिए? तो खूब उत्साह से सफाई करें। यह सोचते हुए कि ये सारे श्रम के काम करके हम देश और दुनिया के गरीबों के साथ एकरूप हो रहे हैं—"बिन श्रम खाये चोर कहाये" यह रोज जो गाते हैं, उसको अमल में लाने का हमें मौका मिला है, इसलिए यह सब जरा विचारपूर्वक खुशी से करें, तो सहज साधना हो जायेगी।

वैसे ही प्रार्थना की बात। प्रार्थना रोज ही होती है। हम प्रार्थना में आते हैं। किस लिए आते हैं? नियम है इसलिये? नियम समझ कर न आयें, हम यह समझ कर आयें कि कितना अच्छा मौका है। बड़ी सुन्दर होती है प्रार्थना।

सद् व्यवहार करें जो मुझसे,
उनसे सद्व्यवहार करूँ।
दुर्व्यवहार करें उनसे,
भी मैं सद्व्यवहार करूँ॥

रोज यह बोलते हैं। भगवान से कहेंगे, रोज हम यह बोलते हैं, यह करने की जरा हमें शक्ति दे तो यह शाम की प्रार्थना जरा जीवित बन जाये—'जीवित' बन जाये, ऐसी कोशिश करें। केवल नियम के तौर पर नहीं, बल्कि उस प्रार्थना के भाव को समझने की, उसको अपने जीवन में लाने की जरा कोशिश करें। यह समझकर प्रार्थना में भाग लें कि ठीक है शाम को कम से कम दस-पन्द्रह मिनट तो उस परमात्मा को याद कर लें।

और भी छोटी-छोटी बातें हो सकती हैं।

—० ग्राहकों से निवेदन ०—

प्रस्तुत अङ्क 'सिद्धयोग' के दसवें वर्ष का बारहवां अङ्क है। इस अङ्क के पहुँचने के उपरान्त मार्च १९७८ तक का दसवें वर्ष का जो मूल्य आपके द्वारा जमा कराया गया था वह समाप्त हो जेगा। अप्रैल ७८ का अंक नये ११वें वर्ष के विशेषांक के रूप में अति उपयोगी सामग्री एवं नवीन आकर्षक रंग-रूप में प्रकाशित होगा। अतः सभी ग्राहक-बन्धुओं से जो इस वर्ष 'सिद्धयोग' के ग्राहक रहे हैं, नये ग्यारहवें वर्ष का मूल्य १५ रुपये मनीआर्डर द्वारा 'सिद्धयोग कार्यालय' सवाई (आगरा) के पते पर भेजने का हम अनुरोध करते हैं, ताकि नवीन वर्ष का विशेषांक उन्हें प्रकाशित होते ही यथा समय भेजा जा सके। मनीआर्डर भेजने के साथ ही यदि पते में कोई परिवर्तन हुआ हो तो ग्राहक भाई-बहन अपने परिवर्तित पते की सूचना भी लिख भेजें।

नवीन साधक भाई-बहनों से भी हम अनुरोध करेंगे कि अगर वे अब तक 'सिद्धयोग' के ग्राहक नहीं बने हैं तो उन्हें अब अपना मूल्य १५ रुपये भेजकर ग्राहक बन जाना चाहिए। योग के क्षेत्र में हिन्दी में प्रकाशित होने वाले पत्रों में 'सिद्धयोग' ही एक ऐसा पत्र है जो योग अंगोंकी परिभाषा और उसकी विशद्-व्याख्या पर प्रतिमास पठनीय और विचारणीय सामग्री से सम्पन्न होकर योग-विद्या के जिज्ञासुओं की संतुष्टि करता है।

'सिद्धयोग' वी० पी० से मंगाने पर वार्षिक मूल्य के अलावा लगभग तीन रुपया अतिरिक्त व्यय और ग्राहकों पर लग जाता है, अतः मूल्य यथा-सम्भव मनीआर्डर द्वारा ही भेजा जाना चाहिए। जो भाई-बहन जयन्ती-महोत्सव में आयें वे यहां आने पर भी कार्यालय में अपना मूल्य जमा कर रसीद प्राप्त कर सकते हैं।

—श्रीनाथ शर्मा ब्रह्मचारी

व्यवस्थापक—'सिद्धयोग', सिद्धयोग कार्यालय, सवाई-आगरा

पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम्

वने रणे शत्रु जलाग्निमध्ये महार्णवे पर्वतमस्तके वा।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि॥

पूर्व जन्म में किया हुआ पुण्य ही पुरुष की वन में, रण में, शत्रुओं में घिर जाने पर, जल में, अग्नि में, महासमुद्र में, पर्वत की चोटी पर सुप्तावस्था में, असावधानी में और सङ्कटकाल आ जाने पर रक्षा किया करता है।

× × ×

गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यमादौ परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन।
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्तेर्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः॥

विद्वान को उचित है कि भला या बुरा कर्म करने के पहले ही उसके परिणाम को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। बिना विचार किये जल्दबाजी में किये कर्म का फल मरणपर्यन्त हृदय को जलाने वाला होता है और काँटे की तरह चुभा करता है।

× × ×

स्थाल्यां वैदूर्यमय्यां पचति तिलकणांश्चान्दनैरिन्धनाद्यैः।
सौवर्णैर्लाङ्गलाग्रैर्विलिखति वसुधामर्कमूलस्य हेतोः॥
छित्वा कर्पूरखण्डान्वृतिमिह कुरुते कोद्रवाणां समन्तात्।
प्राप्येमां कर्मभूमिं चरति न मनुजो यस्तपो मन्दभाग्यः॥

जो अभागा मनुष्य इस कर्म-भूमि संसार में जन्म लेकर तप नहीं करता है, वह मरकत (पन्ना) रत्न से बने हुए पात्र में चन्दन की लकड़ी से तिल के दानों को पकाता है। आक के पेड़ की जड़ का पता लगाने के लिए सोने के हल से पृथ्वी को जोतता है और कपूर के टुकड़ों को तोड़-तोड़ कर कोदों के खेत में चारों ओर डांड़ बनाता है।

× × ×

भीमं वनं भवति तस्य पुरं प्रधानं, सर्वो जनः सुजनतामुपयाति तस्य।
कृत्स्ना च भूर्भवति सन्निधिरत्नपूर्णा यस्यास्ति पूर्वसुकृतं विपुलं नरस्य॥

जिस मनुष्य ने पूर्व जन्म में अत्यधिक पुण्य किया है, उसके लिए भयङ्कर वन भी राजधानी बन जाता है। समस्त लोग सज्जन हो जाते हैं। सारी पृथ्वी खजानों और रत्नों से भर जाती है।

× × ×

मालती कुसुमस्येव द्वे गती स्तो मनस्विनः।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य शीर्यते वन एव वा॥

मालती के फूल के समान विद्वान् मनुष्य की दो ही गतियां हुआ करती हैं—या तो वे सब में शीर्षस्थ (शिरोमणि) होते हैं या फिर वन में ही तप के द्वारा अपने शरीर का त्याग कर देते हैं।

× × ×

अप्रियवचन दरिद्रैः प्रियवचनाढ्यैः स्वदारपरितुष्टैः।
पर परिवाद निवृत्तैः क्वचित्क्वचिन्मण्डिता वसुधा॥

पृथ्वी कहीं-कहीं ऐसे ही योग्य पुरुषों से शोभित होती है जो अप्रिय वचन बोलते नहीं, सदा प्रिय वचन बोला करते हैं। अपनी ही विवाहिता स्त्री से सन्तुष्ट रहते हैं और दूसरों की निन्दा से सदैव दूर रहते हैं।

× × ×

वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणा-
न्मेरुः स्वल्पशिलायते मृगपतिः सद्यः कुरङ्गायते॥
व्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूष वर्षायते।
यस्याङ्गेऽखिललोकवल्लभतमं शीलं समुन्मीलति॥

समस्त लोक का अत्यन्त प्रिय शील जिसके शरीर में विद्यमान है उसके लिए अग्नि जल के समान है, समुद्र छोटी नदी के समान है, सुमेरु पर्वत साधारण पत्थर की चट्टान के समान है, सिंह मृग के समान है, सर्प फूलों की माला के समान है और विषरस भी बरसते हुए अमृत के समान है।

× × ×

सृजति तावदशेषगुणाकरं पुरुष रत्नमलङ्करणं भुवः।
तदपि तत्क्षणभङ्गि करोति चेदहह कष्टमपण्डितता विधेः॥

ब्रह्मा की कितनी मूर्खता है कि वह गुणों के समस्त आगार और पृथ्वी के भूषण स्वरूप जिस पुरुष-रत्न को उत्पन्न करता है उसी को थोड़ी देर में नष्ट होने वाला बना देता है।

—श्री भर्तृहरि

बन्धन का स्वरूप और उसकी निवृत्ति

❀ ब्रह्मचारी श्री जगन्नाथ 'पथिक'

बन्धन का स्वरूप—

अति संक्षिप्त रूप में बन्धन का कारण है जीवात्मा का परमानन्द स्वरूप परमात्मा से मुख मोड़कर, दुःखदायी इन प्राकृतिक पदार्थों में आसक्त हो जाना। उपर्युक्त कथन इस प्रकार अधिक स्पष्ट हो जाता है। 'परमात्मा और जीवात्मा' इन दो चेतनों के अतिरिक्त यह समस्त ब्रह्माण्ड त्रिगुणात्मक जड़ प्रकृति के संयोग से बना है। 'अखिल प्रकृति' और 'पुरुष' के अतिरिक्त यह समग्र कार्य-जगत अनित्य है। परम प्रत्यक्षदर्शी ऋषियों की खोज के अनुसार प्रकृति के समस्त नाम-रूप विकारों को कार्य कारण रूप से प्रत्यक्ष करा देने वाला 'करण' मानव का 'अन्तःकरण चतुष्टय' है। आकृत्या समान होते हुए भी ये अन्तःकरण त्रिगुणों की न्यूनाधिकता से बने होने के कारण 'प्रकृत्या' विभिन्न स्वभाव वाले भी हैं। अतः निज स्वभावानुसार विविध प्रकार के कर्म तथा तज्जनित फल—सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु आदि 'बन्ध-मोक्ष' के उत्पादक होते हैं। ये सर्व कर्म आसक्तिपूर्ण होने के कारण बन्धन के और पुनः इनमें अनासक्ति हो जाने से मोक्ष के हेतु बन जाते हैं। अतः शास्त्रमें 'त्रिविधो बन्धः' और 'त्रिविधो मोक्षः' ये वचन मिलते हैं।

बन्धन में सहायक मानव शरीर—

(१) मानव का स्थूल शरीर जो प्रत्यक्ष ही पंचभौतिक है। यह शुक्र-शोणित के संयोग से उत्पन्न हुआ मलमूत्र की बहुलता तथा वात-पित्त-कफ दोषों से दूषित एवं रोग-शोक-जरा पीड़ित रहने वाला जड़, नश्वर, किन्तु सघन-तमस से आक्रान्त भी है।

(२) सूक्ष्म शरीर जो ११ इन्द्रियों और बुद्धि का संघात है, पञ्चतन्मात्रिक-कोश में सम्पुट हुआ एक ज्योतिर्मय अण्डाकार-पिण्ड है। यह रजः प्रधान पिण्ड सदा विक्षिप्त-चपल रहता है। तथा

(३) 'कारण-शरीर' है, यह 'महत्तत्त्व+अहं' के अंशों से निर्मित, 'सत्त्व बाहुल्य' के कारण ही प्रकाशशील, 'आत्मा-परमात्मा' का 'सदन' होता हुआ भी विषय वासना जाल से ढका हुआ है (इसे 'कर्माशय' भी कहते हैं)। अहंकार-जनित मोह सदृश्य रूप 'आसक्ति' से इन तीनों शरीरों में आ बंधा 'जीवात्मा',

अहन्ता के पड़े आवरण के कारण अपने 'सुन्दर-स्वरूप-ज्योतिर्मय-चेतन स्वरूप' का और "परमानन्द-दाता परमात्मा" का दर्शन-साक्षात्कार नहीं कर पाता, क्योंकि इन तीनों शरीरों के मार्ग से पहुंचने वाला 'ताप-त्रय' का संताप उसे 'स्वरूपस्थ' नहीं होने देता। तीनों तापों से घबराकर और उनसे बचने के लिए यह 'जीव उक्त तीनों पथों से बाह्य-जगत की ओर प्रवृत्त हो जाता है; पीतल पर चढ़े सोने के मुलम्मे के समान, 'सुख-भावना' की मोहिनी से सुन्दर-सुखद भासने वाले 'अज्ञान-तम' इन सांसारिक-पदार्थों और विषयों में आसक्त हो जाता है। यही 'आसक्ति' जीवात्मा को आवागमन-चक्र में फिरा रही है।

अब तीनों बन्धनों का 'रूप' तथा उनसे मुक्ति पा लेने के उपाय दर्शाते हैं—

१. वैकृतिक या वैकारिक बन्धन—

राजसी-प्रकृति के ऐसे पुरुष जिनके कर्म सात्त्विक तथा तामसिक-वृत्ति युक्त हैं, आत्म-साक्षात्कार' से शून्य बने वे 'वितर्कानुगत-समाधि' द्वारा पंचभौतिक जगत् के अनुशीलन में संलग्न हुए—वैराग्य के अभाव से कायिक स्थूल-भोगों में ही आसक्त हैं; इस कारण वे वैकारिक स्थूल शरीर के बन्धन में बंधे हैं। इस बन्धन से मुक्त होने का उपाय है—भोगात्मक स्थूल जगत् भोग्य-स्थूल-विषय तथा इन भोगों का साधन काया के अपवित्र-अनित्य-दुःखद-अनात्मरूपों का 'वितर्कानुगत-क्रम' से "विचारानुगत-समाधियों" द्वारा साक्षात्कार करते हुए ज्ञानपूर्वक वैराग्य प्राप्त कर लेना अर्थात विषयों में बने राग-सुख-बुद्धि को, देह में बने आत्म-भाव को जगत के प्रति दृढ़ीभूत आसक्ति को त्यागते हुए विदेह-भाव को दृढ़ करते जाना।

२. दाक्षणिक बन्धन—

स्थूल जगत् तथा स्थूल शरीर से विगत-राग हुए योगी जो कि विचारानुगत-समाधि द्वारा सूक्ष्म-शरीर के १०-इन्द्रिय+मन+बुद्धि+तन्मात्राओं का साक्षात्कार करते-करते इन के द्वारा प्राप्त होने तथा भोगे जाने वाले सूक्ष्म दिव्य भोगों में आ फंसे हैं। दिव्य विषया सक्ति के कारण ये सूक्ष्म शरीर' के बन्धन में हैं। अतः इन्होंने अभी 'आत्म-साक्षात्कार' नहीं किया है अतः ये 'दाक्षिणिक-बन्धन' में हैं। इस बन्धन से मुक्ति पा लेने का उपाय है—'सविचारसमाधि' की उन्नततर अवस्था में पहुँचकर समग्र दिव्य विषयों को नश्वरता नश्वर-दुःखद-बन्धन और अनात्म-जड़ अनुभव करते हुए हेय' मानना तथा आत्मबोध' के सतत् प्रयास करते जाना यह हृदयंगम कर लेना कि मन+बुद्धि द्वारा प्राप्त 'योग-विभूतियां' आत्म साक्षात्कार में महान् विघ्न हैं, उस योग-माया-जाल को विजित कर लेना 'दाक्षणिक-मोक्ष' है।

३. प्राकृतिक-बन्धन

प्रोक्त दोनों बन्धनों से मुक्त होकर आत्म-साक्षात्कार में प्रयत्नवान् जो मुमुक्षु सम्प्रज्ञात समाधि में आकर आनन्दानुगत-समाधि द्वारा 'चित्त' और अहंकार का साक्षात्कार करते-करते 'आनन्द' अथवा 'अस्मिता' में ही निमग्न हुए प्रकृति-पुरुष-विवेक तक नहीं पहुँचे, अतः वे सत्त्व-प्रधान इस कारण शरीर या लिङ्ग शरीर में बँधे पड़े हैं। यहाँ से छूटने का नाम है—प्राकृतिक मोक्ष। इसके पाने का उपाय है—सम्प्रज्ञात-अवस्था को लाँघ कर—विजित करके निर्विचार-समाधि में प्रवीणता लाभ करते हुए यह योगज 'ऋतुम्भरा प्रज्ञा' प्राप्त कर ली जाय तो 'आत्मा' को कारण शरीर में उपजी मोह ममता=आत्मभाव भावना को 'प्रकृति-पुरुष विभेदक विवेक' के द्वारा भस्म करके चित्त-मुक्त कर देती है। चित्त विमुक्ति का नाम ही प्राकृतिक मोक्ष है। सांख्य का मन्तव्य हम पीछे दर्शा आए हैं—सर्व प्रकार के दुःख तथा बन्धनों से आत्यन्तिक मुक्ति पाने को किया गया पुरुषार्थ ही मोक्षदायक होता है यह तो प्रथम साधना ग्रन्थ का सार है।

पातंजल योग पद्धति

अब सर्वजन्य विख्यात तथा विद्वज्जन सम्मान्य पातंजल सूत्रों को जब देखते हैं तो वहाँ भी दुःख जिहासा अर्थात् बन्ध से मोक्ष को लेकर ही प्रवृत्ति दीखती है यह भी हम पीछे दर्शा आये हैं। पातंजल-योगदर्शन में चित्तवृत्ति निरोध का अन्तिम उपाय 'यथाऽभिमतध्यानाद् वा' १-३९ में निहित ऋषिवर की दया का दर्शन हो रहा है। सूत्र का भाव यह प्रतीत होता है कि मूढ़ से मूढ़ भी दुःखों से छूटकर परमानन्दमय पदको प्राप्त कर ले। एक कुकर्मी को घृणित दुष्कर्मों में भी सुखाभास होता है यह क्यों होता है? इस रहस्य को बिना जाने भी वह पाप कर्मों में पुनः पुनः क्यों प्रवृत्त होता है—सुख लालसा से ही इस दुष्प्रवृत्ति की रोक-थाम के अभिप्राय से ही तथा जनसाधारण को शास्त्रों में अधिक सुख प्राप्ति—स्वर्ग का प्रलोभन दिया गया है। यह स्वर्गांश इस भूतल पर श्रीमानों के प्रासादों में देखा जा सकता है यह प्रलोभन सुकृजनों को सुकर्मों की ओर प्रवृत्त कर देता है। भागवत् शक्तियाँ सुखाभास दर्शाकर भी जीवमात्र को अपनी ओर खींच रही हैं सुख का यह आकर्षण विद्वानों को ही नहीं वरन् एक मूढ़ को भी भक्ति करने के लिए बाध्य करता है—उत्कृष्ट तथा निकृष्ट प्रकार की भक्ति करने के लिए विवश करता है।

योग-शास्त्र के अनुसार प्रत्येक जीव का कर्मविपाक जाति आयु भोग (योग २-१३) रूप से स्थूल तथा सुख-दुःख की अनुभूति या स्मृति के सूक्ष्मरूपों में प्रकट होता है कर्म फल के संस्कार—वासना या बीज कर्माशय

चित्त' (जो कारण शरीर में है) में संचित रह कर जीव को दुर्गत्रयी (तीनों शरीरों) में बांधे रखते हैं। किन्तु कैसा आश्चर्य है कि ये ही तीनों शरीर बन्धन से मुक्त कराने के कारण भी बनते हैं तब, जब कि योग-साधना द्वारा इन्हें विजित कर लिया जाये और 'अतिमानव-पद' को प्राप्त कर लिया जाये त्रिगुणातीत-अवस्था ही अतिमानव पद है।

त्रिगुण-निर्मित महान् और अहंकार के अनन्तर उत्पन्न होने वाली अगली रचना बीजरूपा तन्मात्रा है इन से पंच महाभूतों की रचना होती है। इन पंच महाभूतों का मानव के तीनों शरीरों को सम्बद्ध रखने वाले पंच कोशों से घनिष्ठ सम्बन्ध है विचार एवं चिन्तन परम्परा में गहरा पैठने पर यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि—स्थूल 'अन्नमय कोश' सघन पार्थिव-तत्त्व प्रधान है और 'प्राणमय-कोश' वायु तत्त्व प्रधान 'मनोमय-कोश' जलतत्त्व प्रधान 'विज्ञानमय-कोश' तैजसतत्त्व प्रधान एवं 'आनन्दमय कोश' आकाशतत्त्व प्रधान है। उक्त तीनों शरीरों और पंचकोशों से निर्मित देह-दुर्ग को विजित करके इन सबसे परे—परम-सूक्ष्म आत्मतत्त्व तक पहुँचने के लिए महाभाग ऋषियों में अग्रगण्य महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग की अन्तरङ्गभूत ५ प्रकार की समाधि साधना का विधान किया है—ये ही परम प्रत्यक्ष कराने वाली हैं उनमें से क्रमशः सवितर्क समाधि से अन्नमय कोश का, निर्वितर्क समाधि से प्राणमय कोश का, सविचार समाधि से मनोमय कोश का, निर्विचार समाधि से विज्ञानमय कोश का और आनन्दानुगत तथा अस्मितानुगत समाधियों से आनन्दमय कोश का विजय हो जाता है। फलतः इन समाधियों के द्वारा इन सब कोशों का पूर्ण विज्ञान होकर प्रकृति पुरुष विवेक अथवा प्रसंख्यान की उच्चतर भूमिका प्राप्त हो जाती है।

हन्त! इस बन्दी जीव की परवशता कितनी दुःखद है। अन्तःकरण में फैला कुवासनाओं का यह सघन कठोर जाल तथा देह जगद् व्यापी चन्द्रिकावत् भागवतज्योति का आत्मा को न तो दर्शन करने देता है न इससे लाभ उठाने देता है—आत्मा की मुमुक्षा को भी विफल बना रहा है, योग युक्त मल विक्षेप आवरण का त्रिक आत्म द्युति तथा दैव आभा के उद्घाटन में अर्गल बना हुआ है। कुवासना अभिभूत चित्त दिन-रात प्रतिक्षण ईन्धन झोंक कर अग्नि को शान्त कर देने के वृथा प्रयास के समान ही विषय तृषा को बुझाने में ही संलग्न रहता है। विषय वासनाओं का विषयों के ईन्धन से शमन व पूर्ति हो जाना सर्वथा असम्भव है। इस असम्भव को सम्भव बनाने अर्थात् वासना मात्र से मुक्ति पा लेने का उपाय भी योग ही दर्शाता है और वह है वैराग्य सम्पादन करने का वरिष्ठ उपाय। लोक प्रसिद्ध साधारण त्याग वैराग्य से यहां काम

नहीं बनता और न 'दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्' योग १-१५ इस लक्षण वाले वैराग्य से काम बनता है। अतः 'तत् परम् पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्'—योग १-१६ सूत्र के भाष्य में 'ज्ञानस्यैव परा पराकाष्ठा वैराग्यम्' तथा 'ज्ञानप्रसादमात्रं' 'धर्ममेघ भेद एव परं वैराग्यम्' पुनः ऐसा लक्षण करना पड़ा अर्थात् पदार्थ के अनुलोम-विलोम क्रम से उपलब्ध 'यथार्थ बोध' तथा 'प्रकृति पुरुष-विवेक' से उत्पन्न 'तारक ज्ञान' से 'परवैराग्य' का उदय होता है। इस ज्ञान के दिव्य तेज में वासनाएं दग्धबीज हो जाती हैं। और एक दीर्घ अति दीर्घ काल तक के लिए इनसे मुक्ति मिल जाती है।

जनता जनार्दन की अत्यधिक संख्या समझती है कि न्याय-सांख्य-वेदान्त-योग-उपनिषद् वेदों को सुन पढ़ और रट कर गाल बजाते फिरने से अभय पद मोक्ष हस्तगत हो जाता है। परन्तु ऐसी धारणा मिथ्या—सर्वथा मिथ्या और अज्ञान ही है ऐसा आर्यजनों का कथन तथा लोकाचार सिद्ध है। जो ज्ञान विज्ञान केवल मस्तिष्क में पड़ा गलता सड़ता रहता है और जगत् के इस विशाल कर्मक्षेत्र के प्राङ्गण में विमुक्त होकर नहीं खेलता, खरा नहीं उतरता आचरणीय सिद्ध नहीं हो जाता, कर्म द्वारा उसकी सम्पुष्टि नहीं हो जाती, तब तक उसे सिद्धान्तों का न समर्थन मिलता है और न जनता के हृदयों में वह अपना घर बना पाता है। कर्म-कसौटी पर खरा न उतरने वाला अर्द्ध ज्ञान होता है यह एक पार्श्विक अधूरा ज्ञान भयावह होता हुआ सदा दुर्गति अधोगति ही देता है। अर्द्धज्ञानी यह तुच्छ ही बात भी भूला रहता है कि कर्ता के प्रत्येक कर्मका प्रभाव दोहरा होता है प्रथम अपने पर तथा पुनः दूसरे पर अर्थात् परकीय कर्म का प्रभाव हम पर परकीय कर्म का प्रभाव हम पर भी पड़ता है। स्मृतिपथ से खिसका यह तथ्य तभी हृदय में पैठा करता है जब हम पर परकीय कर्म का प्रभाव पड़कर हमें प्रसन्न अथवा दुःखी बना देता है। यदि कोई अर्द्ध-ज्ञानी यही मान बैठे कि मैं मान अपमान को जीत बैठा हूँ किंवा 'दुःखमेव सर्वम्' को आत्मसात् कर बैठा हूँ तथा मन वचन कर्म से 'एषणा-रहित' बन चुका हूँ। तो उसे इसी जगत्, कर्मक्षेत्र में आकर वह सब कुछ सिद्ध करना पड़ेगा अपने आचरण से व्यवहार से जो वह अपने मस्तिष्क में मान बैठा है—धरे बैठा है। यदि दूसरे के कहे अपशब्द सुन कर चित्त—विकार क्रोध न उपजे, सुख पाकर भी कर्म में प्रवृत्ति न हो, कांचन कामिनी यश की लालसा ही न उपजे—समाकर्षण से नहीं वैराग्योदय से इसकी परीक्षा एक बार नहीं अनेकबार और पदे पदे देनी होगी—अन्यथा वैसा समझ बैठना 'आत्म प्रवंचना' मात्र ही होगा।

धर्म के यथार्थ स्वरूप को जानकर उसके आचरण से निःश्रेयस मिलता है यह मीमांसा दर्शन की प्रतिज्ञा है।

बृहत्तम ब्रह्म सबसे बड़े महानतम पदार्थ महतो महीयान् भूमाको खोजना चाहिए जिससे सब दृश्यमान जगत की उत्पत्ति-स्थिति संहृति होती रहती है। ब्रह्म में निष्ठावान् आस्तिक व्यक्ति ही ब्रह्मको प्रकाशित—अनावरण करने वाली ब्रह्म-विद्या के श्रवण और ग्रहण करनेका पात्र है उसे ही उपदेश किया जाता है। ब्रह्म की प्राप्ति पर सम्भावित भावी दुःखोंका अश्लेष सम्पर्क नहीं हो पाता जैसे कमलपत्र पर पड़ा जल बिन्दु पत्र से पृथक् ही रहता है और पूर्व-कृत 'अघ' दोष, पापकर्म ऐसे भस्म हो जाते हैं जैसे रुई का ढेर अग्नि के सम्पर्क से भस्म हो जाता है। तद्व्यपदेशात्—यह निर्देश पूर्व दिए दृष्टान्तों से स्पष्ट हो गया। जो कर्म विद्या-ज्ञान पूर्वक सावधानी से किये जाते हैं वे ही सुन्दरतापूर्वक फलोत्पादक होते हैं वीर्य-वत्तर होते हैं। ब्रह्म विद्या-सम्यग्ज्ञान ही मिथ्याज्ञान का तथा उससे उत्पन्न होने वाले दुःखों का क्षय करता है। प्रारब्ध कर्म सुख-दुःख के उपभोग से भी नष्ट हो जाते हैं ऐसा भी मत है, तब ब्रह्म-प्राप्ति हो जाती है। कैवल्य (स्वरूपस्थिति) में पहुँच कर परम-ज्योति-रूप ब्रह्म का निरावरण (स्पष्ट) दर्शन हो जाता है। ब्रह्म का आविर्भाव होने पर "प्रियाऽप्रियौ न स्पृशतः" तब स्वरूपस्थ को कैवल्यानुभूति होती है जैसे रोग मुक्त होने पर व्यक्ति अपने को स्वस्थ प्रसन्न अनुभव करता है। इस अवस्था की दृढ़ता पर जन्म-मरण चक्र में आना नहीं होता नहीं होता। [स्मरण रखना चाहिए धर्मज्ञान तथा तदनुसार आच-रण करने से अभ्युदय और ब्रह्मज्ञान से निः-श्रेयसरूपी फल मिलता है अतः धर्म जिज्ञासा के पश्चात् चित्त में प्रसुप्त ब्रह्म जिज्ञासा उद्-बुद्ध होती है—जागती है]

इस भांति न्याय दर्शन उक्त बन्ध मोक्ष से लेकर वेदान्त दर्शन के बन्ध अविद्या विद्या मोक्ष तथा बौद्ध दर्शन के दुःख तृष्णा त्याग निर्वाण योग के व्युत्थान निरोधादि नितरां सुतरां एक ही पदार्थ है। तथा आयुर्वेद दर्शन के रोग रोगहेतु रोगहानोपाय और रोगहानम् भी यही कुछ है। बन्धन से छुटकारा पाकर परमानन्द प्राप्ति का राजपथ सर्वतन्त्र सम्मत अष्टाङ्गयोग ही है। परन्तु इस समग्र दर्शन ग्रन्थ समूह का सार प्रयोजन एतावन्मात्र है। मम इति बध्यते जन्तुः न मम इति विमुच्यते।

उद्धार का पथ—भवसागर में डूबते-उतराते मानव का उद्धार तभी हो सकता है जब वह परम पुनीत वेद के आदेश तेन त्य-क्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम् तथा 'इदन्न मम' के इस मुष्टिका ज्ञान को स्वानुभूति द्वारा निज आचरण में मूर्त करने और वह

ज्ञान हमें भी आत्मसात् करले। मनस्वी महापुरुषों के आदेशानुसार विश्व के समस्त पदार्थों को हम सदा प्रतीकार व्याधे की मान्यता के साथ रोगनाशक औषध के समान निरीह होकर सेवन करें उन्हें अपने उपभोग और उपयोग में लायें। महापुरुषों ने काम को भी काया में उपजने वाले भूख प्यास रोग शोक के समान ही माना है और प्रतीकार व्याधेः वत् ही धन अन्न वस्त्र जाया आदि के सेवन करने का वे विधान करते हैं! पूर्वोक्तरीत्या आचरण करने से मनुष्य विषयों का दास नहीं बनता, इनके बन्धन में नहीं पड़ता। वह बन्धन तथा कष्ट में पड़ता है विषयोंमें सुख की आशा रखते हुए, विषय तृष्णा को निरन्तर भड़काए रखने से। विलासिता से चंधाती इन विशाल मायानगर और नगरियों के सड़ांद भरे गली कूचों में घूम-घूम कर अथवा जनाकीर्ण चौराहों पर खड़े होकर गला फाड़-फाड़ कर जनता को धर्मोपदेश देने मात्र से न तो कभी भौतिक अभ्युदय हुआ है न होता है और न मृत्यु की विभीषिका मिट सकती है और न अभय दात्री ईश्वरीय अमृतछाया ही मिल सकती है। विशाल विश्व के इन माया नगरों की भूल भुलैयों में भटक-भटक कर धक्के मुक्के खाता थका मांदा मानव जब अरण्य वासी किसी श्रोत्रीय आत्मज्ञानी गुरु की शरण पकड़ लेता है और उस महात्मा के बताए स्वानुभूत पथ से अपने देह की छोटी सी देवपुरी में प्रविष्ट होकर विराट् से आती दिव्य ज्योति धारा को निज अन्तर्दृष्टि से देखकर उसमें स्नान कर लेता है तो अवश्य ही अजर अमर बन जाता है। यह कार्य अनासक्ति योग द्वारा सिद्ध होता है।

❁ साधना और मिताहार ❁

मिताहार का अर्थ है अल्पभोजन, उतना अल्प जितने से कि जीवन-यापन का कार्य चल जाय। विद्वानों का मत है कि अन्न शरीर में आलस्य का संचय करता है। जितना अधिक खाया जायगा, उतना ही आलस्य बढ़ेगा और आलस्य योगारम्भ में तो अत्यन्त हानिप्रद है। उसके कारण अभ्यास में मन नहीं लगता और निद्रा सी आने लगती है। इसीलिए मिताहार करना योगाभ्यासी के लिए श्रेयस्कर बताया गया है।

'शुद्ध' सुमधुर स्निग्ध' आदि कहकर घेरण्ड ऋषि ने शुद्ध अन्न खाने का निर्देश किया है। यदि अन्न को शुद्ध करके न खायें तो शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो सकते हैं और मन भी अशुद्ध हो सकता है। क्यों कि आहार का मन पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

—श्रुति सार

योग दर्शन का ध्येय—
मुक्ति का दिशा-दर्शन

[श्री रामनरेश मिश्र]

यह संसार क्या है, इसके साथ हमारा क्या सम्बन्ध है, हम कौन हैं? यह दृश्यमान सारा प्रपंच क्या है, इसका सूत्रधार कौन है? अथवा यह संसार चक्र अपने आप ही चल रहा है इत्यादि विचिकित्साओं को तथ्य रूप से बतादेना—समझा देना दर्शन शास्त्र का मुख्य ध्येय है। पूर्व और पश्चिम के प्राचीन एवं अर्वाचीन समस्त दर्शन साहित्य का मुख्यतया यही आलोच्य विषय रहा है।

उपरोक्त जिन समस्याओं के हल करने का भार दर्शन साहित्य ने लिया है वे बड़ी व्यापक हैं। दुर्बोध हैं, अपरिमेय हैं और विचारणीय हैं। उक्त प्रश्नों का विवेचन हो जाना सारे संसार की समस्त उलझनों का विवेचन कहा जा सकता है। कारण कि यह संसार क्या है, इसके साथ प्राणियों का क्या सम्बन्ध है, प्रत्येक पदार्थ क्षण क्षण में क्यों परिवर्तित हुआ करता है, आदि विषयों का वास्तविक ज्ञान हो जाना ही तो सारे प्रपंचका जानना कहा जाता है। इतने बड़े विवेचन के उत्तर का महान दायित्व दर्शन शास्त्र के सिर पर है और होना भी चाहिए। क्योंकि एकमात्र दर्शन शास्त्र ही ऐसे शास्त्र हैं जो पर्दे की ओट में छिपे सारे रहस्यों को मानवसमाज के सामने प्रकट कर देते हैं, समझा देते हैं और परिणामी हृदय पटलों पर विश्वास और आस्था की प्रतिमा प्रतिष्ठित कर देते हैं।

प्राच्य और प्राचीन दर्शन शास्त्र के मुख्य छः विभाग हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं:—

१ योग २ सांख्य ३ पूर्वमीमांसा ४ उत्तर मीमांसा ५ न्याय ६ वैशेषिक।

इन छहों में दो-दो का परस्पर जोड़ा माना जाता है जैसे योग और सांख्य का वेदान्त और मीमांसा का तथा न्याय और वैशेषिक का। इन सभी के द्वारा देखा जाय तो यह निश्चित होता है कि यह संसार तीन श्रेणियों में विभक्त है। १ प्रकृति २ जीव और ३ ईश्वर।

१ प्रकृति—उसे कहना चाहिए जो चर्म चक्षुओं द्वारा दीखने वाले इस महान जगत को उत्पन्न करती है। मानो यह स्थूल रूप संसार ही 'प्रकृति' शब्द से सम्बोधित होता है। यह प्रकृति जड़ है और त्रिगुणात्मक है।

२ जीव—संसार का वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म विभाग है जो प्राणियों के अन्दर पायी जाने वाली चेतना शक्ति कही जाती है। इसी शक्ति के कारण प्राणीमात्र जीवित कहे जाते हैं और विविध प्रकार के व्यापार कर सकते हैं। इस चेतना शक्ति के बिना पृथ्वी आदि जड़ भूतों के सम्मेलन से बना हुआ यह स्थूल शरीर बेकाम हो जाता है, चेष्टा रहित हो जाता है और नष्ट भी हो जाता है।

३ ईश्वर—यह संसार का तीसरा विभाग है जो उक्त दोनों से परे है। यही जगत का नियन्ता और संसार का सूत्रधार माना जाता है। परन्तु साधारण श्रेणी के व्यक्ति इस परे पदार्थ का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं कर सकते। इसलिए इसकी सत्ता सबसे अधिक विवाद-ग्रस्त है।

इस जगत में कोई-कोई ऐसे दार्शनिक या विज्ञानवेत्ता होगये हैं जो ईश्वर को नहीं मानते और निरीश्वरवादी कहलाते हैं, फिर तो भी आस्तिक सम्प्रदाय को एक ऐसी विशेष शक्ति का मानना अन्ततोगत्वा अनिवार्य हो जाता है जो जीवात्मा शक्ति को परेशान करके दूर बैठा देती है, विवश कर देती है और अपने से अतिरिक्त एक तीसरी शक्ति को मानने के लिए बाध्य कर देती है। फलतः जो निरीश्वरवादी कहलाते हैं उन्हें छोड़कर सभी दार्शनिक ईश्वर शक्ति को मानते हैं।

इस तरह इस संसार के प्रकृति-जीव ईश्वर इस विभागत्रय की मीमांसा के लिए दर्शन-साहित्य की सृष्टि हुई है और इसी की विवेचना में समाप्ति भी हो जाती है।

उपरोक्त षट् दर्शनों में से हम यहाँ योग-दर्शन की कुछ विशेषताओं का वर्णन करेंगे।

योग और सांख्य दोनों ही इस संसार को प्रकृति का परिणाम मानते हैं तथा प्रकृति का स्वरूप भी एक सा ही मानते हैं। सांख्य मतानुसार संदिग्ध विरक्त मनुष्य अधिकारी, किन्तु योग एकाग्र चित्त वाले को अधिकारी मानता है। सांख्य ने एक अव्यक्त १ महान १ अहंकार ५ महाभूत ५ तन्मात्रा और ११ इन्द्रियां ये २४ तत्व माने हैं पर योग ने एक ईश्वरतत्व और मानकर २५ तत्व माने हैं। सांख्य तो ईश्वर को साकार मानने की कोई आवश्यकता नहीं समझता किन्तु योग समाधि प्राप्ति करने के लिए साकार भी मानता है। सांख्य जीव को चैतन्य विभु-अनेक व असंग और भोक्ता मानता है और योग इन विभूतियों के साथ साथ उसे कर्ता भी मानता है। सांख्यमत ने संसार का कारण केवल त्रिगुणात्मक प्रकृति को माना है और यौगिक मत ने प्रकृति के साथ-साथ ईश्वर को भी प्रेरक रूप से कारण माना है। सांख्य और योग दोनों परिणामवादी हैं एवं द्वैतवादी भी। दोनों प्रत्यक्ष अनुमान और आगम इन तीनों प्रमाणों के मानने वाले हैं। सांख्य 'रवं' पदार्थ का शोधक है।

और योग चित्त ऐकाग्रय का शोधक है। सांख्य ज्ञान काण्ड है और योग उपासना काण्ड है।

इस प्रकार यह दोनों दार्शनिक प्रायः एक पथ पर चलने वाले हैं यही कारण है कि योग शास्त्र को 'सेश्वर' सांख्य कहा जाता है। योग के साथ सांख्य की मित्रता का परिचय भगवान श्रीकृष्ण ने भी इन शब्दोंमें दिया है—

सांख्य योगौ पृथग्बालाः,
प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एक मप्यास्थितः सम्य-
गुभयो र्विन्दते फलम् ॥

अर्थात् सांख्य और योग को पण्डित जन अलग-अलग नहीं कहते किन्तु विवेकहीन ही उसे अलग-अलग जानते है। इनमें से किसी भी एक का आश्रय लेने से दोनों का फल प्राप्त हो जाता है।

इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण पुनः आगे कहते है—

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं,
तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च,
यः पश्यति स पश्यति ॥

यानी जो पद सांख्य वालों को मिल सकता है, वही योग वाले को प्राप्त हो सकता है। जो इन दोनों को एक दृष्टि से देखता है वास्तव में वही वास्तविक रूप से देखता है।

परन्तु पहले कहा जा चुका है कि सांख्य ज्ञानवादी है और योग कर्मवादी बिना उपासना या कर्म के मोक्ष की उपलब्धि नहीं हो सकती। यही इतनी सी ही दोनों में विषमता है। इसी विषमता ने सांख्य के लिए ऐसी परिस्थिति पैदा की जिसके कारण सांख्य सिद्धान्त को हानि उठानी पड़ी और योग का साम्राज्य आजतक अक्षुण्ण रहा तथा आगे भी बना रहेगा। यदि निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाय तो योग-दर्शन सभी दर्शनों की अपेक्षा विशेष शक्तिशाली और उपादेय है। अपने इस कथन की पुष्टि में हम यहां 'शिव-संहिता' का एक श्लोक उद्धृत कर रहे हैं—

आलोक्य सर्व शास्त्राणि,
विचार्य च पुनः-पुनः।
इदमेक सुनिष्पन्नं,
योग-शास्त्रं परमतम् ॥

जिस योग-शास्त्र का इतना बड़ा महत्त्व है, जो समस्त दार्शनिक क्षत्रों का एक सम्राट कहा जा सकता है उसके आदि निर्माता कौन है? इस विषय में निश्चित रूप से यही कहा जा सकता है कि योग के प्रथम आचार्य श्री हिरण्य गर्भ है। फिर इनके पीछे वार्षगण्य और याज्ञवल्क्य आदि हुए है, किन्तु योग-सूत्रों के रचयिता महर्षि श्री पतञ्जलि जी ने तो योग-शास्त्र की पताका को इतना ऊँचा उठा दिया है कि इनकी छत्रछाया में अन्य दार्शनिकों की छत्रछाया संकुचित सी हो जाती है। यह भी कहा जाता है कि पहले सांख्य और योग की बड़ी मित्रता थी, पर 'यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।' इस आप्त वचन की सार्थकता पूर्णतया महर्षि पतञ्जलि जी ने ही की है। अस्तु, यह निर्विवाद-सी बात है कि योग-तत्त्व का सार-सिद्धान्त योग-सूत्र द्वारा ही परिस्फुट हुआ है।

श्री पतंजलि देव कब हुए इसका ठीक

शक्तिप्रदायिनी मधुर नींद

श्री विनयमोहन शर्मा

नींद के विषय में कई तरह के प्राकृतिक चमत्कार देखने को मिलते हैं। कोई आठ घण्टे सोकर भी अपने को थका हुआ अनुभव करते हैं, कोई वर्षों तक पलक न मारकर भी अपने को ताजा समझते हैं। हमारे यहाँ कुम्भकर्ण की लगातार छः महीने सोने की कहानी हिन्दू घरों में काफी प्रचलित है। यों तो ६० वर्ष जीने वाला व्यक्ति भी बीस साल की नींद तो लेता है पर उसकी शोहरत नहीं मचती, क्योंकि उसने २० साल तक एक ही नींद में व्यतीत नहीं किये। स्व० एडीसन जैसे व्यक्ति ६० वर्ष में ज्यादा से ज्यादा १५ वर्ष सोते हैं। कुछ व्यक्ति ऐसे भी पाए जाते हैं जो जागते हुए भी सोये रहते हैं।

नींद क्या है ?

इस प्रश्न का उत्तर वैज्ञानिक देकर भी नहीं दे सके हैं। जब हम सोते हैं तब शरीर विस्मृत-सा और मस्तिष्क बहुत हल्का प्रतीत होता है। रक्त-घटक मस्तिष्क से रक्त खींच कर शिथिल पड़ जाते हैं। सोते समय मस्तिष्क में बहुत ही कम रक्त रह जाता है। नींद को सबसे अधिक शक्तिदायी और ताजगी देने वाली कहा गया है। परन्तु सभी व्यक्तियों के लिए समान मात्रा में नींद की आवश्यकता

(पिछले पृष्ठ का शेष)

ठीक जन्मकाल क्या था, इत्यादि बातें विवादग्रस्त हैं किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वह व्यासदेव जी से पहले हुए हैं, क्योंकि योग-सूत्रों पर व्यासदेव कृत भाष्य सबके सामने है। यह भी कहा जाता है कि योग-सूत्रों के जनक महर्षि श्री पतंजलि ने ही राजमृगांक (वैद्यक) और महाभाष्य व्याकरण की भी रचना अलग-अलग नामों से की है। यथा—

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां,
मलं शरीरं च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां,
पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

अर्थात् जिन्होंने योग शास्त्र द्वारा चित्त व्याकरण भाष्य द्वारा वचन के और वैद्यक द्वारा शरीर के दोषों को दूर कर दिया है, उन श्री पतंजलि को करबद्ध नमस्कार है।

जीव और ब्रह्म की एकता स्थापित कराना ही इस दर्शन का मुख्य उद्देश्य है और इसी उद्देश्य की पूर्ति निर्विकल्प समाधि द्वारा कैसे सुलभ होती है—इसे महर्षि पतंजलि जी के योग-सूत्रों के अध्ययन से भली प्रकार समझा जा सकता है।

नहीं होती। कुछ तो ऐसे भी व्यक्ति हैं जिन्हें नींद की कतई आवश्यकता अनुभव नहीं होती। इंगलैण्ड के नार्दियायर नामक वर्कशाप स्थान में एक व्यक्ति ने, जिसके चेहरे पर ललाई झलक रही है और म्युनिसिपैलिटी में सड़क की बत्तियां जलाने का काम करता था, बीस वर्ष से एक झपकी भी नहीं ली है। इसका कहना है, मुझे न सोने में जरा भी थकान नहीं मालूम होती, मैं तो अपने जीवन भर बिस्तरे पर लेटने की इच्छा नहीं करता। सुबह उठते ही जब हमें शरीर में फुर्ती नहीं मालूम होती तो हम यह अनुमान लगाते हैं कि या तो हमें अच्छी नींद नहीं आयी और यदि आयी है तो वह गहरी नहीं थी। डा० डोनल्ड लेयार्ड ने बीस वर्ष तक नींद के विषय में अध्ययन किया है। उनका कहना है कि अमरीका में ५० फसदी व्यक्ति गहरी नींद नहीं सोते।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक स्व० थामस एडीसन का नाम उन आश्चर्यजनक पुरुषों में लिया जाता है जिन्हें बहुत ही कम नींद की आवश्यकता होती थी। पर एडीसन के विषय में यह कहा जाता है कि वे नींद अपनी इच्छा के अनुसार कभी भी ग्रहण कर लेते थे, ठीक उसी तरह हम जिस तरह नल से अपनी इच्छानुसार जब चाहे तब पानी ले लेते हैं। एडीसन स्वयं कहते थे कि यह बात नहीं है कि मैं सोता ही नहीं हूँ। मैं तो जब चाहता हूँ तभी सो सकता हूँ। इस तरह ६० घण्टे लगातार काम करके वे लगातार १६ घण्टे सो सकते थे और जब उठते फुर्ती और ताजगी उनका साथ देती। अन्य अवसरों पर वे 'कुत्ते की नींद' सो लेते थे। क्षण में निद्रित, क्षण में जाग्रत। थामस डेविस नामक पत्रकार की यह आदत थी कि वे ९ बजे रात को सोते और १ बजे उठते, उसके बाद तीन-चार बजे तक काम करते रहते और सो जाते थे। फिर सुबह ७ बजे उठ जाते थे। और जब उठते, ताजगी मालूम होने लगती। ब्रिटेन के लायड जॉर्ज जब महायुद्ध से लौटे तो उनका स्वास्थ्य इतना अच्छा था कि ताज्जुब होता था। प्रेस-प्रतिनिधि से आपने कहा था—'दिन में जब कभी मैं थकान अनुभव करता पन्द्रह मिनट सो लेता। मैंने अपना ऐसा अभ्यास बना लिया था कि इस तरह जब मैं चाहता, सो सकता था। मैं इच्छानुसार शीघ्र ही बिस्तर पर नींद में हो जाता और १५-२० मिनट तक गहरी निद्रा में मग्न रहकर उठ जाता।" इसी तरह महात्मा गांधी, नेपोलियन और एलेक्जेण्डर भी इच्छानुसार सो और जग सकते थे। कुछ व्यक्ति आगे जागरण करने के लिए पहले ही कुछ घण्टे ज्यादा सो लेते हैं। वेम्बु नामक व्यक्ति रात-रात भर जागता रहता है। जनता समझती है, वह सोता ही नहीं, पर वह दिन को ही रात की कसर निकाल लेता है। कालेजों में रात भर

आचरण करने वाले कई छात्रों की भी यही आदत होती है। नींद के विषय में तरह-तरह की धारणायें प्रचलित हैं। बायीं ओर करवट लेकर सोने से हृदय पर दबाव पड़ता है, यह धारणा सर्वथा गलत है। हृदय केवल बायीं ओर ही नहीं है वह छाती के मध्य की ओर भी है। व्यक्ति किसी भी करवट सोकर दोनों तरफ आराम से सोता है। वह नींद में प्रति घण्टे दस-बारह वक्त करवटें बदलता है।

नींद को बुलाने के कई उपाय हैं। पहले अपने कमरे को अच्छी तरह सजाओ, कमरे में हरा और नीले रंग का सामान अधिकता से होना चाहिए। यदि मन में कोई अशान्त विचार घर किये हुए होता है तो नींद नहीं आ पाती। डाक्टर साहब के पास एक ऐसा अनिद्र रोगी आया जिसको महीनों गहरी नींद न आयी थी। कारण पूछने पर पता चला कि एक रात को उसने जब अपनी प्रेमिका को फोन पर बुलाया तो जवाब आया वह अपने किसी प्रेमी मित्र के साथ घूमने गई हुई है। बड़ी मुश्किल से उसे नींद तो आई पर रात में उसने सौ-दोसौ करवटें बदलीं। हालांकि उसे निश्चित समय तक सोने दिया गया था। पर उसकी नींद गहरी न होने से वह सोने का लाभ नहीं उठा सका। जो व्यक्ति गहरी नींद नहीं सोता उसके स्वभाव में चिड़चिड़ापन साफ झलक उठता है। संगीत सुनने से भी अच्छी नींद आती है। इसी तरह घूमकर सोना और परिश्रम करना भी नींद लाने के आवश्यक साधन हैं।

नींद को भूख सबसे अधिक बाधक रहती है। खाली पेट नींद नहीं आती। अतः सोने के कुछ घण्टे पूर्व हल्का भोजन गहरी नींद लाने में सहायक होता है। इससे रक्त उदर की ओर दौड़ता है और मस्तिष्क में रक्त कम हो जाता है। नींद के लिए मस्तिष्क में रक्त का न रहना बहुत आवश्यक है। चिन्ता करने से भी नींद नहीं आ पाती। सोने की शय्या पर जाने से पूर्व शवासन की प्रक्रिया अपनाने से चिन्ता रहित होकर नींद भली प्रकार आ जाती है।

योगी और साधकों को नींद भी आहार के समान परिमित मात्रा में ही लेना श्रेयस्कर रहता है जैसा कि भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा है।

न चाति स्वप्न शीलस्य,
जाग्रतो नैव चार्जुन।

अर्थात् न अधिक सोओ न अधिक जागो।

—:o:—

—:o:—

सत्यं शिवं सुन्दरम्

अपना सूक्ष्म निरीक्षण करिए

अपनी पूर्व दशा पर विचार कर क्या हम यह नहीं समझ लेते कि जिन पर प्रेम करते हैं, वे ही हमें गुलाम बना रहे हैं। ईश्वर की ओर से विमुख कर रहे हैं—कठपुतली की तरह नचा रहे हैं। परन्तु मोह वश हम उन्हीं के चंगुल में आ फंसते हैं। संसार में सच्चा प्रेम, सच्चा निस्वार्थ भाव दुर्लभ है—यह जानकर भी हम संसार से अलिप्त रहने का उद्योग नहीं करते। आसक्ति हमारी जान मार रही है। अभ्यास से कौनसी बात सिद्ध नहीं होती। आसक्ति को भी अभ्यास से हम हटा सकते हैं। दुःख भोगने की जब तक हम तैयारी न कर लेंगे, तब तक वे हमारे पास भी नहीं आवेंगे। हम खुद दुःखों के लिए मन में घर बना रखते हैं। फिर यदि वे उसमें आकर बसें तो इसमें उनका क्या अपराध है। रोग जब किसी शरीर को बसने योग्य समझ लेता है, तभी उसमें प्रवेश करता है। मूर्खता और अभिमान को किनारे रखकर पहले हमें यह सीखना चाहिए कि हम दुःखों के शिकार न बनें। जब-जब व्यवहार में आपने ठोकरें खायी होंगी, तब-तब उसकी तैयारी आपने पहले से ही कर रक्खी होगी। दुःख के मार्ग दर्शक हम ही हैं। बाह्य सृष्टि भी उन्हें हमारे सामने ढकेलती है। पर हम चाहें तो उनका सहज में प्रतिकार कर सकते हैं। बाह्य जगत पर हमारा अधिकार नहीं, परन्तु अन्तर्जगत पर पूर्ण अधिकार है। यदि हम इसी भावना को दृढ़ कर पहले से ही सचेत रहें तो हमें दुःखों से सामना नहीं करना पड़ेगा।

जब हमें कोई दुःख प्राप्त होता है, तब हम उसका दोष किसी दूसरे पर लादना चाहते हैं, अपनी भूल को नहीं देखते। 'दुनिया अन्धी है', 'इसमें रहने वाले सब लोग अज्ञ हैं।' यह कहकर हम अपने मन में सन्तोष कर लेते हैं। परन्तु सोचना

चाहिए कि दुनिया मतलबी है—बुरी है, तो उसमें हम क्यों रहते हैं? सब पर यदि अज्ञता का आरोप किया जा सकता है तो हम उस विशेषण से कब छूटते हैं? यह सब कुछ नहीं, संसार का निरीक्षण करने के पहले हमें अपना सूक्ष्म निरीक्षण करना चाहिए। संसार को वृथा दोष देकर झूठ बोलना सच्चे वीर का लक्षण नहीं है। वीर बनिये और सच बोलिये। आप में शक्ति होगी तो दुःख आपसे डरेगा, क्योंकि वह किसी के भेजने से आपके पास नहीं आता, आप स्वयं उसे बुलाते हैं।

× × ×

हरेक वस्तु की शक्ति स्थूल रूप में नहीं, किन्तु सूक्ष्म रूप में होती है। उसकी गति अत्यन्त शीघ्र होने से वह हमें दीख नहीं पड़ती, परन्तु जब वह स्थूल वस्तु के द्वारा प्रकट होती है, तब उसका अनुभव हमें हो चलता है। कोई बलवान् पुरुष जब किसी बोझ को उठाता है, तब उसकी नसें पुष्ट दीख पड़ती हैं, परन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि बोझा उठाने की शक्ति उन नसों में है। उस पुरुष के ज्ञान-तन्तुओं की शक्ति उन नसों द्वारा प्रकट हुई है। ज्ञान-तन्तुओं को उनसे भी सूक्ष्म वस्तु द्वारा शक्ति प्राप्त होती है और उस सूक्ष्म वस्तु को हम विचार कहते हैं। जल के नीचे से जब बुलबुला उठता है, तब वह हमें दिखायी नहीं देता, परन्तु ज्यों-ज्यों वह ऊपर को आने लगता है, त्यों-त्यों उसका रूप अधिक स्पष्ट हो चलता है। विचारों की भी यही बात है। जब वे बहुत सूक्ष्म होते हैं, तब हमें उनका अनुभव नहीं होता—हृदय में वे कब उठते हैं, इसका भी पता नहीं चलता। परन्तु मूल स्थान को छोड़कर जब वे स्थूल रूप से प्रकट होने लगते हैं, तब उन्हें हम अपने चर्म-चक्षुओं से भी देख लेते हैं। लोगों की यह शिकायत सदा ही बनी रहती है कि अपने विचार और कार्यों पर हमारा अधिकार नहीं चलता। यदि विचारों के उठते ही हम उनका नियमन कर सकें—स्थूल कार्यों की सूक्ष्म शक्ति को अपने अधीन बनाये रहें—तो यह सम्भव नहीं कि हमारा मन अपने काबू में न रहे और जब हम अपने मन पर अधिकार जमा लेंगे, तब दूसरों के मन पर अधिकार जमाना हमारे लिए कठिन नहीं रह जायगा, क्योंकि सब मन एक ही विश्व व्यापी समष्टि मन के अंश-रूप हैं।

मन और ममता

श्री सुखीराम लवानिया

मेरे मन चपल ! तू तनिक विराम ले,
सावधान चित्त हुआ, मेरी बात मान ले।
इस झूठी दुनिया में भटक-भटक नित्य,
कितना लुटा है मित्र ! लेखा-जोखा जान ले।
यदि हर बार तुझे, हार ही लगी है हाथ,
कभी न सफल हुआ, अमित थकान ले।
तो तू क्यों न, सब दिन साधिका-सफलता की,
खोल, राम-नामही की छोटी सी दुकान ले।१

बीती सब आयु त्रय-ताप में तड़पते ही,
करता रहा है क्रूर कलुष वरण तू।
पल को भी, गा सका न राम का गुणानुवाद,
ध्या सका न, क्षणको भी राधिका-रमण तू।
दौड़ता रहा सवेग, पातकों के पंथ में ही,
कर पा सका न कोई, शुद्ध आचरण तू।
आज भी सचेत हो के, बिगड़ी बनाले बात,
प्रेम से पकड़ मन ! प्रभु की शरण तू।२

प्यारे मन ! मैंने तेरा, कभी न बिगाड़ा कुछ,
सादर सप्रेम सदा, प्यार से दुलारा है,
समय-समय तेरी बात में लगा के बात,
अपने अहित को भी न विचारा है।
सो भी तो सुना है, मेरे सर्वनाश ही पै मित्र,
लेने देता, क्षण को न नाम का सहारा है।
इतनी उदारता पै, इतनी कृतघ्नता को,
कोई कब तक कर पायेगा गवारा है।३

सिद्धगुरु श्री नानक देव ੴ

श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी

संसारी लोगों पर जो शासन करते हैं वे राजा कहलाते हैं। वे कायदे और नियमों के अनुसार लोगों पर शासन करते हैं। उनके यहाँ सेना, शस्त्र, नौकर, चाकर, हाकिम, हुक्काम आदि सभी शासन की उपयुक्त सामग्रियां होती हैं। उनके हाथ में दण्ड होता है, जो उनकी आज्ञा के विरुद्ध चलता है उसे वे दण्ड विधान के अनुसार दण्ड देते हैं, इस कारण हृदय से इच्छा न रहने पर भी लोगों को माननी पड़ती है। ऐसे राजाओं का आधिपत्य उनके जीवन काल तक ही रहता है। किसी किसी को तो अपने जीवन में ही नीचा देखना पड़ता है। इन शासकों की मृत्यु के पश्चात् अथवा पदच्युत होने के अनन्तर फिर उन्हें कोई नहीं पूछता। कारण कि लोगों पर इनका यथार्थ आधिपत्य नहीं था, लोग हृदय से इनकी बातों को नहीं मानते थे, किन्तु दण्ड के भय से उन्हें मानने के लिए विवश होना पड़ता था।

इन राजाओं के अतिरिक्त एक दूसरे प्रकार के भी राजा होते हैं। उनके पास फौज नहीं रहती, कोष नहीं रहता। उनके अच्छे महल न दरबार भी नहीं होते, यहां तक कि उनके पास अपने खाने के लिए भी दो मुट्ठी अन्न इकट्ठा नहीं रहता। जिस पर भी असंख्यों पुरुष उनकी आज्ञाओं को बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ मानते हैं। उनके हाथ में दण्ड-विधान भी नहीं होता, किन्तु उनके प्रेम-विधान के सामने बड़े से बड़े पुरुष हर समय हाथ बांधे उनकी आज्ञा में खड़े रहते हैं। यह बात भी नहीं कि उनकी उपस्थिति में ही लोग इनका इस प्रकार से आदर करते हों, किन्तु इनके संसार से चले जाने के पश्चात् भी लोगों के हृदयों पर इनका शासन ज्यों का त्यों ही बना रहता है। लोग इनके वाक्यों को ईश्वरीय वाक्य मानते हैं और उनके अनुसार बर्ताव करने की भी सदा चेष्टा करते रहते हैं। गुरु नानकदेव उन्हीं पारलौकिक महाराजाओं में से एक महाराजा हो चुके हैं। उन्हें इस संसार को त्यागे आज चार सौ वर्ष के लगभग होते होंगे, किन्तु साधारणतया सम्पूर्ण संसार पर और विशेष कर पंजाब प्रान्त पर उनका शासन अभी तक अक्षुण्ण रीति से बना हुआ है और आगे भी सदा इसी प्रकार बना रहेगा।

वंश परिचय और जन्म :—

पंजाब प्रान्त के लाहौर जिले में तलवण्डी नामका एक छोटा सा ग्राम था। उसमें कल्यान चन्द नाम का एक बेदी क्षत्री निवास करता था। उसकी भाग्यवती भार्या का नाम तृप्ता था। सम्वत् १५२६ विक्रमी को कार्तिक पूर्णिमा के दिन परम भाग्यशाली कल्यानचन्द के पुण्यवती तृप्ता के गर्भ से एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। आगे चलकर यही बालक एक सिद्ध महात्मा हुआ, जो संसार में गुरुनानक के नाम से विख्यात हुआ।

बाल्यकाल :—

बालकपन से ही इनके स्वभाव में स्वतन्त्रता थी, भगवद्भक्ति अनेक जन्मों की जमी हुई थी, ज्यों-ज्यों इनकी अवस्था बढ़ने लगी, त्यों-त्यों भीतर की जमी हुई भक्ति भी पिघल कर बाहर प्रकट होने लगी। यह एक साल की ही अवस्था में खड़े होने लगे, पांच वर्ष की अवस्था में इन्हें बुरे भले का ज्ञान होने लगा। साधारणतया भी बैठते तो ये पद्मासन लगाकर ही बैठते। बालकों से बातें करते तो वही परमात्मा सम्बन्धी। खेल भी खेलते तो वही भगवत्-चरित्र, सारांश कि ये जो भी कार्य करते सब आदर्श और भक्ति पूर्ण ही होते थे।

उपयुक्त अवस्था होने पर ये हिन्दी संस्कृत फारसी पढ़ने के लिए क्रमशः पाधा, पण्डित और मौलवी के पास भेजे गए किन्तु उन्हें पढ़ना क्या था? ये तो जाने कितने जन्मों के पढ़े हुए आये थे। इन्होंने किसी को भी कुछ पढ़कर न दिया। उल्टे वे लोग ही इनके शिष्य बन गये। जब पिता ने देखा कि यह लड़का तो पढ़ने लिखने योग्य नहीं है तब उन्होंने इसे गाय भैंस चराने का काम सौंपा, परन्तु जिसने पाठशाला में बैठकर एक अक्षर पढ़कर नहीं दिया वह भला गाय भैंसों के पीछे लाठी लिये कब घूमने लगा। घर से तो यह भैंस चराने जाते किन्तु जंगल में जाकर किसी एकान्त वृक्ष के नीचे आसन लगाकर आत्म-चिन्तन में मस्त हो जाते। जब इनके पिता को यह बात मालूम हुई तब उन्होंने इनसे कुछ व्यापार करना चाहा।

एक दिन पिता ने इन्हें कुछ रुपये दिये और कहा—बेटा इन रुपयों को ले जाओ और खूब अच्छा रोजगार करना। इतना कहकर पिताने बाला नामक एक नौकर भी इनके साथ कर दिया। ये रुपयों को लेकर लाहौर की ओर चले। रास्ते में इन्हें कुछ भूखे साधु मिले। इन्होंने सोचा इससे अच्छा सौदा, और क्या होगा। यह सोच कर इन्होंने सभी रुपये साधुओं को दे दिए और रीते हाथों घर लौट आये। इसे सुनकर इनके पिता बहुत क्रुद्ध हुए।

योग-क्षेम के निमित्त वृत्ति—

जब इनके पिता ने देखा कि यह तो कुछ

भी काम नहीं करता, बिना कुछ काम किये गृहस्थी का काम कैसे चलेगा? यह सोच कर उन्होंने अपनी बड़ी लड़की नानकी के पास इन्हें भेज दिया। सुलतानपुर में इनके बहनोई जैराम वहां के नवाब के दीवान थे. उन्होंने इन्हें नवाब के भण्डार में मोदी के काम पर लगा दिया। कहते हैं कि ये बहुत-सा सामान वैसे ही साधुओं को बांट देते थे और तौलते समय कहते जाते थे—"सब तेरा है तेरा।" लोगों ने जब इस बात की शिकायत नवाब से की तब उसने भण्डार की जांच कराई, परन्तु सामान सब ठीक निकला। इस प्रकार कई बार जांच होने पर भी ये दोषी साबित नहीं हुए। इसी तरह ये १०-वर्ष तक नवाब के भण्डारी का काम करते रहे।

पारिवारिक जीवन—

सं० १५४५ में १९ वर्ष की अवस्था होने पर इनका विवाह गुरदासपुर जिलेके मूलचन्द खत्रीकी सुलक्षणी नामक कन्या के साथ हुआ। ये विवाह के पश्चात् भी सुलतानपुर में ही रहे और नवाब के भण्डार में बराबर काम करते रहे इनके वहीं पर दो पुत्र भी हुए। बड़े पुत्र का जन्म सं० १५५१ में हुआ। इनका नाम श्रीचन्द रखा गया। आगे चलकर ये बड़े विरक्त महात्मा हुए, जिन्होंने उदासी सम्प्रदायकी स्थापना की। उदासी सम्प्रदाय के ये ही मूल पुरुष हैं। दूसरे पुत्र का जन्म सं० १५५२ में हुआ। इनका नाम लक्ष्मीचन्द रखा गया। इनका आचरण कुछ विशेष अच्छा नहीं था। इनके वंशज अभी तक विद्यमान हैं।

श्री नानकदेव की धर्मपत्नी यथा नाम तथा गुणवाली नारी थीं। श्री नानक जी यद्यपि देखने के लिए तो गृहस्थियों की भांति रहते थे, किन्तु इनके भीतर सदा वैराग्य की ज्योति जलती रहती थी। गृहस्थी में रहते हुए भी ये सदा अपने नित्य नैमित्तिक कर्मों को बड़ी ही सावधानी के साथ करते रहते थे।

वैराग्य और तीर्थाटन—

जब इनकी अवस्था २८-३० वर्ष की हुई, तब इन्हें गृहस्थ के झंझट एकदम भार मालूम पड़ने लगा। इन्होंने गृहस्थ को छोड़कर साधु-वेश धारण करने का पक्का निश्चय कर लिया। थोड़े ही दिनों में इन्होंने अपने विचार को कार्यरूप में परिणत किया और अपनी प्यारी पत्नी को, दुधमुहे बच्चों को ईश्वर के आश्रय पर छोड़कर परिवारीजनों से सांसारिक नाता तोड़कर इन्होंने साधुवेश धारण कर लिया। विरक्त होने पर इन्होंने भ्रमण करना आरम्भ किया। चलते समय इन्होंने बाला और मरदाना नामक दो आदमियों को भी अपने साथ ले लिया। मरदाना जाति का मीरासी था, वह नानक जी में पहले से ही बड़ी भक्ति रखता था और उनके बनाये हुए भजनों को इकतारा पर बड़े स्वर से गाया करता था।

सबसे पहले इन्होंने पूर्व की यात्रा की। पंजाब के अनेक शहरों में होते हुए ये दिल्ली आये। दिल्ली से ये अलीगढ़ होते हुए मथुरा, वृन्दावन, गोकुल आदि ब्रज के मुख्य स्थानों में घूम-फिरकर आप आगरे पहुंचे और वहां कुछ काल विश्राम किया। आगरे से कानपुर, लखनऊ, अयोध्या जी होते हुए काशी जी पहुंचे। वहां पर कुछ काल रहकर साधु-महात्मा तथा पण्डितों से सत्सङ्ग करते रहे। काशी से इन्होंने गंगा जी के किनारे-ही किनारे पैदल यात्रा की। बिहार के मुख्य-मुख्य नगरों में घूमते हुए ये गयाजी पहुँचे। गया से बंगाल के बहुत से नगरों में होते हुए ये कलकत्ते पहुँचे वहाँ से बालेश्वर, मेदिनीपुर आदि शहरों को पवित्र करते हुए जगन्नाथ जी पहुँचे। यहाँ से भलीप्रकार जगन्नाथ जी का दर्शन करके इन्होंने पूर्व की यात्रा समाप्त की और फिर पंजाब ही लौटकर चले आये।

पूर्व की यात्रा समाप्त करके इन्होंने दक्षिण की यात्रा की। दक्षिण में इन्होंने श्री रामेश्वर धाम तक की यात्रा की और वहां से समुद्र पार करके सिंहल द्वीप में भी गये वहां का राजा शिवनाभ इनका शिष्य हो गया। उसी के लिये इन्होंने "प्राणसंगली" नाम की योग सम्बन्धी पुस्तक बनायी। दक्षिण की यात्रा करके फिर ये सुलतानपुर ही लौट आये और वहां आकर कर्तारपुर में एक धर्मशाला बनाई। धर्मशाला बन जाने पर अपने परिवार के लोगों को भी इन्होंने वहीं बुला लिया।

दक्षिण की यात्रा के बाद फिर उत्तर की यात्रा का नम्बर आया। उत्तर के सभी तीर्थों की इन्होंने यात्रा की। बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, जमनोत्री, नैनीताल, अल्मोड़ा आदि सभी पहाड़ी स्थानों में घूमते-फिरते ये नैपाल और भूटान तक गये। वहां से लौटकर फिर ये कर्तारपुर ही आ गये।

तीनों धामों की यात्रा तो इन्होंने कर ली अब पश्चिम का एक ही धाम शेष रह गया। इसलिये अब इन्होंने पश्चिम दिशा को धावा बोला। पश्चिम में ये गुजरात गये और वहां से डेराइस्माइलखां, जामपुर, शिकारपुर, होते हुए सिन्ध और करांची की सैर करते हुए बिलोचिस्तान में पहुँचे। वहां से मक्का मदीना आदि मुसलमानों के तीर्थों के दर्शन करते हुए अन्त में कर्तारपुर ही आ गये। इस प्रकार लगभग ४० वर्षों में इन्होंने चारों धामों की यात्रा की।

चारों धामोंकी यात्रा करके इन्होंने कर्तारपुर में ही अपना आसन जमा दिया और वहीं स्थायी रूप से रहकर भक्तों को शिक्षा तथा उपदेश देने लगे। इनके उपदेशों में बड़ा आकर्षण था, जो एक बार भी इनके उपदेशों को श्रद्धा, भक्तिपूर्वक सुन लेता, वह सदा के लिए इनका दास बन जाता। ये अपने शिष्यों को सिक्ख कहा करते थे। इस प्रकार धीरे-धीरे इनके बहुत से सिक्ख हो गये, जो कि सदा इनकी सेवा में तत्पर रहते और ये जो भी आज्ञा दे देते उसका तत्काल ही पालन करते। इस प्रकार ये लोगों को श्रद्धा और भक्ति का प्रसाद वितरण करते हुए सुखपूर्वक अन्त तक कर्तारपुर में ही रहे।

कुछ प्रचलित किंवदन्तियाँ –

जब वे तीर्थ यात्रा कर रहे थे, उस समय घूमते-फिरते एक गाँव में पहुँचे। वहाँ पर लोगों ने इनका बड़ा भारी आदर सत्कार किया। दूसरे दिन वहाँ का एक बड़ा भारी जमींदार इनके पास आया और इनसे बोला—"महाराज का भोजन आज मेरे यहाँ होगा।" इन्होंने उससे कह दिया "अच्छा भाई! दे जाना।" उसके चले जाने के थोड़ी देर बाद एक गरीब तक्षक गुरुजी के पास आया और उसने बड़ी दीनता से कहा—"महाराज! आज इस क्षुद्र सेवक के ऊपर कृपा हो। आज्ञा हो तो कुछ रूखा-सूखा टुकड़ा, जो मेरे यहाँ है, महाराज को भिक्षा के लिये अर्पण कर जाऊँ।" गुरुजी ने उससे भी कह दिया—हाँ दे जाना। दोपहर के समय वह अमीर नाना प्रकार के व्यञ्जन सजाकर लाया। गुरु जी ने सजे हुए थाल को एक ओर रखवा लिया और आप बैठकर दर्शनार्थ आये हुए लोगों से बातें करने लगे। उस अमीर ने समझा गुरुजी थोड़ी देर बाद प्रसाद पावेंगे, अतः वह भी वहीं बैठ गया। इसके बाद वह तक्षक जो उसके घर में थे, मिस्से, रूखे टिक्कड़ और साग लेकर आया। गुरुजी ने उसे बड़े प्रेम से ले लिया और मालिक का भोग लगाकर पाने लगे। अब तो लोगों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा।

उस अमीर ने पूछा—"क्यों महाराज मेरे ऐसे अच्छे-अच्छे पदार्थों को छोड़कर आप इस तक्षक की सूखी रोटियों को क्यों इतने प्रेम के साथ पाने लगे?" इस पर गुरुजी ने उस थाल को मँगवाया और उसमें से कुछ पदार्थ लेकर मसलने लगे। मसलते ही उसमें से खून टपकने लगा। फिर उन्होंने तक्षक की रोटियों को मसला उनमें से दूध टपकने लगा। तब उन्होंने बैठे हुए आगन्तुकों को सम्बोधित करते हुए कहा—"ये पदार्थ दूसरों का अन्याय से खून चूसकर तैयार किये गये हैं, इसलिये इनमें से खून निकला और इस तक्षक ने मेहनत करके ईमानदारी के साथ इस अन्न को उपार्जन किया है। अतः इसमें से दूध की धार निकली है।" यह सुनकर वह अमीर बहुत लज्जित हुआ और गुरुजी के पैरों पर पड़ गया।

जब ये नैनीताल अल्मोड़ा की ओर भ्रमण कर रहे थे तब घूमते हुए ये एक जंगल में पहुँचे। वहाँ पर बहुत से गोरखपन्थी योगी रहते थे। उन्हें अपनी सिद्धाई का बड़ा अभिमान था, जो भी साधु वहाँ आता वे उससे कुछ सिद्धाई दिखाने को कहते। इसी प्रकार उन्होंने इनसे भी कुछ करामात दिखाने के लिए कहा। वहाँ पर एक रीठे का पेड़ था, इन्होंने रीठे के फलों को अपनी योग शक्ति से आधा मीठा बना दिया, और उनसे कहा—"आधा तो हमने मीठा कर दिया है, अब आधे को तुम करो। उन्होंने बहुत प्रयत्न किया, किन्तु उनके हिस्से का आधा रीठा मीठा नहीं हुआ पहिले वह स्थान गोरखनाथ के नाम से प्रसिद्ध था, तब से उसका नाम "भानकनाथ" हो गया। वह पेड़ अब भी मौजूद है, उसके फल तक आधे मीठे होते हैं।

उपसंहार—

नानकजी अपने समय के सुधारक और भक्त दोनों ही थे। उनका जन्म ऐसे भयंकर समय में हुआ था, जब भारतवर्ष में मुसलमानों ही का बोलबाला था। ऐसे समय में इतनी निर्भीकतापूर्वक मुसलमानी रीति-रिवाजों का खण्डन करना कोई साधारण काम नहीं था। उस समय धर्म के लिए सिर को धड़ से अलग कर देना तो साधारण काम समझा जाता था। जिसने मजहब के खिलाफ तनिक भी चीं-चपड़ की कि झट कत्ल का ही हुक्म होता था। उस समय में निर्भय होकर हिन्दू मुसलमान दोनों ही की बातों का खण्डन करना बड़े साहस का काम था। नानकदेव में वह साहस था और उन्होंने किया भी।

सम्वत् १५९० में इनके माता और पिता दोनों ही चल बसे। इनकी अवस्था भी ६०,६५ वर्ष की हो चुकी थी। अतः इन्हें यह चिन्ता हुई कि हमारे पश्चात् हमारी गद्दी का अधिकारी कौन हो? उन्होंने अपने बड़े पुत्र श्रीरामचन्द्र से कहा, किन्तु वे तो पहले ही से विरक्त थे। उन्होंने साफ इनकार कर दिया। छोटे पुत्र लक्ष्मीचन्द पर इनका विश्वास नहीं था, उनसे ये सन्तुष्ट नहीं रहते थे। अतः इन्होंने अपने विश्वासनीय शिष्य अंगद को अपने बाद गद्दी का अधिकारी चुना। अंगद बड़े गुरुभक्त थे। नानकदेव ने कई बार उनकी कड़ी-कड़ी परीक्षायें लीं, किन्तु वे उनमें अनुत्तीर्ण नहीं हुए।

जब उन्हें अपने मन के माफिक गद्दी का अधिकारी मिल गया तब ये बड़े सन्तुष्ट हुए। होते-करते सम्वत् १५९६ का आश्विन मास आ उपस्थित हुआ। उसी मास की कृष्ण पक्ष की १०मी के दिन ७० वर्ष की अवस्था में नानकदेव इस असार संसार से सदा के लिए चल बसे। इनका शरीर तो नष्ट हो गया, किन्तु इनका नाम अमर हो गया। सच है "कीर्तिर्यस्य स जीवति।"

इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में भी कबीरदास जी की ही भाँति आख्यायिका प्रसिद्ध है। जब हिन्दू मुसलमान, फूंकने और दफनाने के लिये लड़ने लगे तब शव गायब हो गया। तब हिन्दू मुसलमान दोनों ने ही कफन को आधा-बाँटकर जलाया और दफनाया।

नानकजी के पश्चात् उनकी गद्दी पर दस गुरु और हो गये। वे दसों बड़े सदाचारी और तपोनिष्ठ निकले। किसी भी सम्प्रदाय में इस प्रकार दस पीढ़ी इतनी विशुद्ध नहीं दीख पड़ती है। पंजाब के सिक्खों में जो आजकल कुछ जागृति और उत्साह की मात्रा दीख पड़ती है, उसका कारण इन दस गुरुओं की सच्चरित्रता और विशुद्धता ही है। दसवें गुरु गोविन्दसिंह जी हुए हैं। उन्होंने मुसलमान शासकों का नाकों-दम कर दिया। इनके वीर पुत्रों ने भी अपने शरीर को धर्म की वेदी पर बलिदान चढ़ाकर अपने नाम को सदा के लिए अमर बना लिया। गुरु गोविन्दसिंह बड़े दूरदर्शी थे, उन्हें इस बात का विश्वास था कि अब आगे इतना निस्पृह, निर्मल और सदाचारी पुरुष गुरु की गद्दी के लिए मिलना मुश्किल है, इसलिए उन्होंने अपने से पूर्व ९ गुरुओं की वाणियों को संग्रह करके "ग्रन्थ साहब" बना दिया और अपने शिष्यों को आज्ञा दी कि अबसे गुरु कोई मनुष्य न होकर "ग्रन्थ साहब" ही गुरु होंगे। इसीलिए सिक्ख लोग "ग्रन्थ साहब" को ही "गुरु ग्रन्थ साहब" कहते हैं और उनकी ठाकुर जी की भाँति पूजा करते हैं।

योगाचार्य महर्षि घेरण्ड और चण्डकापालिक

❀ आचार्य श्री यशोवर्द्धन

महर्षि घेरण्ड की गणना योग-शास्त्र के प्रमुख आचार्यों में की जाती है। इतिहास में इनके काल का प्रामाणिक विवरण उपलब्ध नहीं है किन्तु इतना पता अवश्य चलता है कि उपनिषद् काल के उत्तरवर्ती ऋषियों में इनकी विद्यमानता थी। जिस काल में यह विद्यमान थे उसी समय इस देश में चण्डकापालिक नाम के एक राजा राज्य करते थे। चण्डकापालिक की विशेष अभिरुचि योग-विद्या के प्रति थी।

इस राजा ने वेदों-उपनिषदों और पुराणों आदि में उल्लिखित सभी योग-प्रकरणों को ध्यान से पढ़ा था, किन्तु जो कुछ उसने पढ़ा था उससे राजा को पूर्ण सन्तुष्टि नहीं हुई थी। अपनी योग-सम्बन्धी जिज्ञासाओं के समाधान हेतु वह अनेक मुनियों के आश्रम पर भी आता-जाता, किन्तु वास्तविक तत्त्व का दर्शन उसे कोई न करा सका। अन्त में उसे किसी प्रकार पता चला कि उसकी राजधानी से दूर दक्षिण दिशा की ओर जो तपोवन है उसमें घेरण्ड नाम के ऋषि रहते हैं और वे योग के साक्षात् अवतार बताये जाते हैं। अवश्य ही उनसे आपकी सभी जिज्ञासुओं का समाधान हो सकेगा। तदनुसार महाबली चण्डकापालिक ने अपने कुछ विश्वस्त सेवकों के साथ दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया। कई दिन की यात्रा के के पश्चात् वह उस तपोवन में जा पहुँचा जहाँ महर्षि घेरण्ड रहते थे। ऋषि के आश्रम से कुछ दूर पर उसने अपने सेवकों को एक वृक्ष के नीचे छोड़ दिया और स्वयं नंगे पैरों ऋषि आश्रम पर पहुँचकर ऋषि को जो पूर्ण तपोनिष्ठ और योग-निष्ठ प्रतीत हो रहे थे, राजा ने भूमि पर लेट कर साष्टांग-प्रणाम किया। ऋषि ने यथोचित आसन देकर राजा को अपने समीप ही बैठ जाने को कहा। राजा के बैठ जाने पर ऋषि बोले—

राजन्! तुम्हारे आने का प्रयोजन मैं,समझ चुका हूँ। तुम्हारे मन की ऐसी जिज्ञासाओं को मैंने ध्यानयोग से जान लिया है। अतः सावधान होकर तुम उनका उत्तर सुनो।

घेरण्ड ऋषि ने राजा चण्डकापालिक को

योग-सम्बन्धी जिज्ञासाओं के जो उत्तर दिये हैं वही घेरण्ड-संहिता के नाम से प्रचलित हैं।

इस लेख में हम घेरण्ड ऋषि के योग-सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण विचार योग-मार्ग के साधकों के हितार्थ देने का उपक्रम कर रहे हैं। यदि 'सिद्धयोग' के पाठकों को इन विचारों से कुछ भी मार्ग-दर्शन मिल सका तो हम अपने श्रम को सफल समझेंगे।

महर्षि घेरण्ड ने राजा को सम्बोधित करते हुए कहा, हे महाबाहो सुनो—

नास्ति मायासमं पापं,
नास्ति योगात्परं बलम्।
नास्ति ज्ञानात्परोबन्धु-
र्नाहङ्कारात्परोरिपुः॥

अर्थात् माया के समान कोई पाप नहीं, योग के समान कोई बल नहीं, ज्ञान के समान कोई बन्धु नहीं और अहङ्कार के समान कोई शत्रु नहीं है।

यस्य नाहंकृतो भावो,
बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
यः समः सर्वभूतेषु,
जीवनं तस्य शोभते॥

जिसमें अहङ्कार का भाव नहीं है और जिसकी बुद्धि में अहंभाव लिप्त नहीं है जो सब भूतों के समान भाव से देखता है उसका जीवन प्रशंसनीय होकर शोभा को प्राप्त होता है।

सुकृतैर्दुष्कृतैः कार्यै-
र्जायते प्राणिनांघटः।
घटादुत्पद्यतेकर्म,
घटीयन्त्रं यथाभवेत्॥

प्राणियों के शरीर सुकृत और दुष्कृत से उत्पन्न होते हैं। शरीर से कर्म और कर्म से शरीर की उत्पत्ति होती है।

ऊर्ध्वाधोभ्रमतेयद्वत्,
घटीयन्त्रं गवां वशात्।
तद्वत्कर्मवशाज्जीवो,
भ्रमतेजन्ममृत्युभिः॥

जैसे सूर्य की किरणों के अनुसार सूर्य घड़ी की चलती हुई सुइयां समय बताती हैं वैसे ही प्राणी भी जन्म-मरण रूपी संसार चक्र में घूमता रहता है।

समाधिः संविदुत्पत्तिः,
परजीवैकतां प्रति।
नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा,
कूटस्थो दोषवर्जितः॥

अर्थात्—जीवात्मा और परमात्मा की एकता का ज्ञान होना ही 'समाधि' है, क्योंकि एक ही आत्मा नित्य, सर्व व्यापी, कूटस्थ और दोष-रहित है।

षट्कर्म तथा त्राटक

(गोरक्ष–पद्धति से)

मेदः श्लेष्माधिकः पूर्वं
षट्कर्माणि समाचरेत ।
अन्यस्तु नाचरेत्तानि,
दोषाणां समभावतः ॥

जिसका मेद और श्लेष्मा अधिक हो उसको प्राणायाम साधन में अत्यन्त कष्ट से भी अभ्यास दृढ़ नहीं होता इसलिए उनका प्रथम षट्कर्म करके तब प्राणायाम का अभ्यास करना उचित है, इसलिए षट्कर्म विधि कहते हैं।

धौतिः—

चतुरंगुल विस्तारं,
हस्तपञ्च दशायतम् ।
गुरुपदिष्ट मार्गेण सिक्तं,
वस्त्रं शनैर्ग्रसेत् ॥

चार अंगुल चौड़ी, पन्द्रह हाथ लम्बी, बारीक वस्त्र (पगड़ी) की पट्टी थोड़े गरम जल में भिगोकर मुख से पहले दिन एक हाथ, दूसरे दिन दो हाथ, तीसरे दिन तीन हाथ एवं क्रम से १५ दिन में पूरी गुरूपदेशानुसार निगल जायें।

पुनः प्रत्याहरेच्चैत-
दुदितं धौतिकर्म तत् ।
कासश्वासप्लीह कुष्ठं,
कफरोगांश्च विंशतिः ॥
धौतिकर्मप्रभावेण,
प्रयान्त्येव न संशयः ॥

उस वस्त्र का पिछला किनारा मुख में दांतों से दाब ओठों से लगाकर धौतीकर्म करे इससे छाती में लगा वस्त्र उदर (अंतड़ि) में पहुँच कर साफ करता है तब थोड़ा थोड़ा बाहर निकाले, यह धौतिकर्म है। कास, श्वास, प्लीहा, कुष्ठादि, विषरोग बीस प्रकार के कफ रोग इस धौतिकर्म के प्रभाव से निस्सन्देह नाश हो जाते हैं।

बस्तिः—

नाभिदघ्ने जले पायौ,
न्यस्तनालोत्कटासनः ।
आधाराकुञ्चनं कुर्यात्क्षालनं,
बस्तिकर्म तत् ॥

अब बस्तिकर्म कहते हैं—नाभिमात्र जल में उत्कटासन बैठकर छः अंगुल लम्बी और अंगुल प्रवेशयोग छिद्र वाली बांस की नली चार अंगुल गुदा में प्रवेश कर गुदा आकुञ्चन करके पेट में जल चढ़ाय नौलीकर्म करके बाहर छोड़ दे, यह बस्तिकर्म है। धौति बस्ति बिना भोजन किये नहीं करना चाहिए तथा इसके उपरान्त शीघ्र भोजन करना योग्य है।

गुल्मप्लीहोदरं चापि,
वातपित्त कफोद्भवाः ।
बस्तिकर्म प्रभावेण,
क्षीयन्ते सकलामयाः ॥

बस्तिकर्म से गुल्म, प्लीहा, जलोदर, वात, पित्त, कफ से उत्पन्न सर्वरोग नष्ट होते है।

धात्विन्द्रियान्तः करणप्रसादं,
दद्याच्च कान्ति दहन प्रदीप्तिम् ।
अशेषदोषोपचयं निहन्याद्,
अभ्यस्यमानं जलबस्तिकर्म ॥

जल में बस्तिकर्म के अभ्यास से शरीर के सप्तधातु रस १, रुधिर २, मांस ३, मेद ४, अस्थि ५, मज्जा ६, शुक्र ७ तथा पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय और अन्तःकरण मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार ताप, विक्षेप, शोकादि, स्नेह, गौरव, आवरण, दीनता, राजसतामस का धर्म सभी निवृत्त होते हैं। प्रसन्नता, कान्ति बढ़ती है, जठराग्नि दीप्त होती है, वातादि समस्त दोषों को दूर कर नीरोगता प्राप्त होती है।

नेतिः—

सूत्रं वितस्ति सुस्निग्धं,
नासानाले प्रवेशयेत् ।
मुखान्निर्गमयेच्चैषा,
नेतिः सिद्धैर्निगद्यते ॥

अब नेतिकर्म कहते हैं—कि एक बालिस्त मुलायम एवं ग्रन्थि रहित सूतका एक किनारा नासिका के एक पुट में प्रवेश कर दूसरे पुट को बन्द कर पूरक करे, जब कुछ सूत ऊपर चढ़े तब मुख स्वास छोड़कर सूत बाहर निकाले। एक किनारा मुख के बाहर, दूसरा नासिका के बाहर दोनों को हाथों से पकड़ कर शनैः-शनैः चलाता रहे इसी नेतिकर्म सिद्धजन कहते हैं।

कपोलशोधिनी चैव,
दिव्यदृष्टि प्रदायिनी ।
जत्रूर्ध्वजात रोगौघं,
नेतिराशु निहन्ति च ॥

यह क्रिया कपोल तथा नासिका-छिद्रों के मल को दूर कर सूक्ष्म पदार्थदर्शी दिव्य-दृष्टि देती है और जत्रु (कण्ठमूल) स्थान से ऊपर समस्त रोग-समूह को शीघ्र शान्त करती है।

त्राटकम्—

निरीक्षेन्निश्चलदृशा,
सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः ।
अश्रु संपात पर्यन्त,
माचार्यैस्त्राटकं स्मृतम् ॥

अब त्राटक कहते हैं—एकाग्र दृष्टि से कुछ सूक्ष्म वस्तु को जब तक नेत्रों में पानी न आवे देखता रहे। नेत्रों में जल आने पर छोड़ देवे, इसे मत्स्येन्द्रादि त्राटक कहते हैं। मैं (भाष्यकार) समझता हूं कि सूक्ष्म वस्तु के स्थान में प्रथम नासाग्र अभ्यास होने पर भ्रू मध्य देखे तो और भी अच्छे गुण शीघ्र होंगे।

मोचनं नेत्ररोगाणां,
तन्द्रादीनां कपाटकम् ।
यत्नतस्त्राटकं गोप्यं,
यथा हाटकपेटकम् ॥

यह त्राटककर्म नेत्र रोग-नाशक, बल बढ़ाने वाला, आलस्यनिद्रादियों का कपाट (किवाड़) है तथा और तमोगुणी चित्तवृत्ति के औपाधिकों को दूर करता है। जैसे सुवर्ण की पिटारी को यत्न से रखते हैं। ऐसे ही इस कर्म को भी गोप्य रक्खें।

नौलिः—

अमन्दावर्तवेगेन,
तुन्दं सव्यापसव्यतः ।
नतांसो भ्रामयेदेषा,
नौलिः सिद्धैः प्रचक्ष्यते ॥

अब नौलिकर्म कहते हैं—दोनों कंधा नीचे नवाय उदर को दक्षिण-वाम भाग करके जल के भ्रमर (भौंरे) के समान घुमावे, इसे सिद्ध लोग नौलि कहते हैं। अनुभव सिद्ध यह भी है कि दक्षिण वाम भाग से घुमाने के अभ्यास हुए में नीचे ऊपर को भी चरखी के समान उदरानल को घुमाना चाहिए।

मन्दाग्नि सन्दीपनपाचनादि,
संधापिकानन्दकरी सदैव ।
अशेषदोषामयशोषिणी च,
हठक्रियामौलिरियं हि नौलिः ॥

यह क्रिया मन्दाग्नि को नष्ट कर भोजन किये अन्नादिकों की शीघ्र परिपाक करने वाली धौत्यादि सर्व कर्मों में (श्रेष्ठ) मुकुट है। धौति, बस्ति इन दो क्रियाओं में नौलि करनी होती है, इसलिए यहां नौलिकी विधि कहा है।

कपालभातिः—

भस्त्रावल्लोहकारस्य,
रेचपूरौ ससंभ्रमौ ।
कपालभातिर्विख्याता,
कफदोषविशोषणी ॥

अब कपालभातिकर्म कहते हैं—लुहार की धौंकनी (खाल) की भांति शीघ्र-शीघ्र रेचन को रेचक-पूरक करे, इसे कपालभाति कहते हैं, इससे बीस प्रकार के कफ रोग दूर होते हैं।

षट्कर्मनिर्गतस्थौल्य,
कफदोष मलादिकः ।
प्राणायामं ततः कुर्या-
दनायासेन सिद्धयति ॥

उक्त षट्कर्मों द्वारा जब स्थूल भाव कफ-दोष मलपित्तादि दूर हो जाते हैं, तब प्राणायाम करे तो बिना श्रम ही योग-सिद्धि होती है।

उदरगतपदार्थमुद्वमन्ति पवन-
मपानमुदीर्य्य कण्ठनाले ।
क्रमपरिचयवश्यनाडिचक्रा,
गजकरणीति निगद्यते हठज्ञैः ॥

अब गजकरणी मुद्रा कहते हैं कि अपान-वायु को कण्ठनाल में चढ़ाकर उदरगति भुक्त-पीत अन्न जलादि को निकाले, इस अभ्यास से नाडिचक्र अपने अधीन (वशीभूत) होता है इसे हठज्ञ योगी गजकरणी कहते हैं।

अतिस्त्व—प्रेम

श्री सत्येन्द्र यादव

शून्य,
अचिन्त्य, असीम,
विवेक की सीमा से परे,
किसी अज्ञात कुहेलिका की
धूमिल—प्रच्छाया में,
आलोक—पुंज की परिकल्पना
कर, मानव का अन्तर्मन
सौंप देता है—
भाव—नैवेद्य,
भक्ति का अर्घ्य—पात्र !

होता है हत-कृत्य,
पाप-पुण्य, धर्म-अर्थ,
उद्दीप्त कांक्षायें,
आचार-अनाचार
सब कुछ समर्पित कर,
दिखाता अनासक्ति
सम्मोहक जीवन से
विश्व के कण-कण से !
संशय शृंखलाओं में परिबद्ध,
चेतना का पंछी,
फड़फड़ाता है विवश,
लेकिन कभी-कभी ही;
अन्यथा सिद्धान्तों का
दाना चुग,

सन्तुष्ट हो,
पिंजर पर हँसता नहीं
रोता नहीं,
स्वतः सिद्धा क्षीण सा
विवश हो देखता है
आत्मछलना की मान्यताओं को
क्रमशः बढ़ती है जो
अपने अस्तित्व को।

किन्तु फिर भी,
फिर भी इतना निश्चित है
उस छलना के अभाव में
जीवन की यात्रा
बिना मांझी बिना पतवार
निर्लक्ष्य बहना है
ज्वारों पर चंचलतर
तरंगों के शिखरों पर

हताश होकर बैठने से
अच्छा है मृगजल के
पीछे सतत परिभ्रमण।
अस्तु, हे ! अलक्ष्य
तुमको है मेरी
बौद्धिक चेतना का
विनत प्रणाम !
सश्रद्ध अभिनन्दन
तेरे अबूझ अस्तित्व का !

ओ३म शान्तिः शान्तिः शान्तिः

ॐ गुरु भाई-बहनों से ॐ

'श्री सिद्धगुफा' सवाई के योग प्रशिक्षण केन्द्र से सम्बन्धित सभी गुरु भाई-बहनों से हम विज्ञप्ति द्वारा हम यह विशेष रूप से निवेदन करना अपना कर्तव्य समझते हैं कि 'सिद्धयोग' का प्रचार व प्रसार और और अधिक बढ़ानेके लिए, उन सबका जो अब तक 'सिद्धयोग' के ग्राहक नहीं बन पाये हैं, १५ रु० अग्रिम मूल्य भेजकर स्वयं ग्राहक बन जाना अति आवश्यक है। इसके अलावा यह भी आवश्यक है वे श्री गुरुदेवजी के योग सम्बन्धी विचारों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए अपने-अपने क्षेत्रमें 'सिद्धयोग' के दो-दो, तीन-तीन ग्राहक और बना डालने में भी अपना सहयोग प्रदान करें ताकि योग-प्रचार का अधिकाधिक वह लक्ष्य प्राप्त हो सके, जिसके लिए श्री सद्गुरुदेव जी और उनका आश्रम कृत संकल्प है।

आशा है सभी गुरु भाई-बहन हमारे इस निवेदन पर ध्यान देकर योग-प्रचार के क्षेत्र में अपना क्रियात्मक सहयोग अवश्य प्रदान करेंगे।

श्रीनाथ शर्मा ब्रह्मचारी
व्यवस्थापक—
सिद्धयोग कार्यालय, सवाई

'सिद्धयोग' हिन्दी मासिक (पत्रिका) का विवरण

फार्म नं० ४

१.	प्रकाशन का स्थान —	श्री सिद्धगुफा, सवाई, आगरा (उ०प्र०)
२.	प्रकाशन की अवधि —	मासिक
३.	मुद्रक का नाम—	देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य'
	राष्ट्रीयता—	भारतीय
	पता—	कर्मयोग प्रिंटिंग प्रैस, बसई कलां, ताजगंज आगरा-1
४.	प्रकाशक का नाम—	देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य' कृते सिद्धगुफा प्रकाशन
	राष्ट्रीयता—	भारतीय
	पता—	श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र सवाई, आगरा
५.	सम्पादक का नाम—	योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज
	राष्ट्रीयता—	भारतीय
	पता—	श्री सिद्धगुफा सवाई, आगरा
६.	स्वत्वाधिकारी—	अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज।

मैं देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य' यह घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य है।

कृते सिद्धगुफा प्रकाशन
देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य'
प्रकाशक

२८-२-७८

Sidhayoga Regd No. L.

योग के सिद्धान्त और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्ध योग

संस्थापक संपादक तथा संरक्षक
योगिराज अनंत श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

० अक्षय आनन्द ०

मैत्र्युपनिषद् के ऋषि ने कहा है :—

चित्तमेव हि संसारस्तत् प्रयत्नेन शोधयेत्,
यच्चित्तस्तन्मयो भाति गुह्यमेतत्सनातनम्।
चित्तस्य हि प्रसादेन हन्ति कर्म शुभाशुभम्,
प्रसन्नात्मात्मनि स्थित्वा सुखमव्ययमश्नुते॥

अर्थात् चित्त (मन ही) संसार है, इसलिए उसे प्रयत्नपूर्वक शुद्ध करे। जैसा चि[त्त] वैसा मन यह गुह्य सनातन सिद्धान्त है। चित्त प्रसन्न होने पर शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जा[ते] हैं और शान्त हुआ मन जब आत्मा में लीन होता है, तब उसे अक्षय आनन्द की प्राप्ति होती है।

इसी उपनिषद् के ऋषि ने आगे पुनः कहा है—मन के मैलको त्याग देना ही स[च्ची पवित्रता] है। मन और इन्द्रियों को वश में रखना ही पवित्रता है। शारीरिक मलोंकी जो शुद्धि मि[ट्टी] जोड़ जल आदि से होती है वह लौकिक है। यथार्थ शुद्धि तो मन से मोह और अहंकार त्यागने से ही हो सकती है। ज्ञान-रूप मिट्टी और वैराग्य रूप जल से धोने पर जो मानसि[क] निर्मलता प्राप्त होती है वही वास्तविक पवित्रता है।

महर्षि पतंजलि के अनुसार—यम नियम और प्राणायाम की क्रिया से चित्त वा[सनाओं] से विरक्त होकर समाहित होता है।

मुद्रक—देवीप्रसाद शर्मा 'शिव' धर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, [illegible] [illegible], ताजगंज, आगरा—